http://www.jainkosh.org

आप्तमीमांसा-प्रवचन

[द्वितीय भाग]

●

[प्रवक्ता – अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज]

●

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

प्रकरणमें वक्तव्यकी प्रारंभिक भूमिका–तत्त्वार्थ महाग्रन्थके मंगलाचरणकी भूमिका रूपमें रचित इस आप्तमीमांसा ग्रन्थमें आप्तकी मीमांसाकी गई है। आप्तका अर्थ है अरहंत देव जिनके द्वारा धर्म देशना विकसित हुई है, जिनका वचन पूर्णतया प्रमाणभूत है, जिनके प्रणीत तत्त्वोपदेशोंपर चल कर यह जीव शान्त निर्मल हो सकता है। ऐसे आप्त प्रभुकी मीमांसामें सर्वप्रथम बताया है कि हे प्रभो ! आपके पास देव आते हैं, आपका आकाशमें गमन होता है, आपके निकट चामरादि विभूतियाँ हैं इन बातोंसे आप हमारे महान नहीं हैं, क्योंकि ये चमत्कार मायावी पुरुषोंमें भी देखे जाते हैं। हे प्रभो ! आपका शरीर सम्बन्धी अन्तरङ्ग अतिशय है, पुष्पवृष्टि आदि वहिरङ्ग महोदय है इस कारण आप मेरे लिये महान नहीं हो, क्योंकि ये बातें रागादिमान सुर असुरोंमें भी पाई जाती हैं। हे प्रभो ! आपने एक तीर्थ (शासन) चलाया है इस कारण महान होनेके सम्बन्धमें बात यह है कि तीर्थ चलाने वाले विभिन्न अनेक पुरुष हुए हैं किन्तु उन सबके वचनोंमें परस्पर विरोध है, इस कारण सबके आप्तपना नहीं हो सकता कोई ही गुरु हो सकता है। यह बात सुनकर भट्ट प्रभाकर मीमांसक बोले कि सत्य है यह बात कि तीर्थ चलाने वालोंके वचनमें परस्पर विरोध है इसी कारण तो कोई सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता। अतः अपौरुषेय श्रुति ही प्रमाण है। इसपर कहा गया है कि तीर्थं कृन्तति इति तीर्थकृत् अर्थात् तीर्थच्छेद सम्प्रदायमें भी परस्पर विरोध है, भावनावादी भट्ट श्रुतिवाक्यका अर्थ भावना कहते हैं नियोगवादी प्रभाकर श्रुतिवाक्य का अर्थ नियोग कहते हैं, विधिवादी वेदान्ती श्रुतिवाक्यका अर्थ स्वरूप अर्थात् ब्रह्म कहते हैं। उन सबमें भी परस्पर विरोध है इस कारण इनमें भी आप्तता नहीं है।

चार्वाक द्वारा आप्त आगम आदिका निराकरण और इन्द्रियगोचर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थमें ही प्रमाणत्वका कथन—यह सब कथन सुनकर चार्वाक लोग कहते हैं कि यह सब बड़ा ही अच्छा कहा गया है। ये सब बातें तो हमें इष्ट ही हैं, क्योंकि न तो सुगत आदिक कोई सर्वज्ञ है, और न ये कोई प्रमाण हैं, न वेदवाक्य भी प्रमाण हैं। प्रमाण तो केवल यही है जो कुछ आँखोंसे दिख सकता है, जो इन्द्रियोंके द्वारा अनुभव में आता है। निष्कर्ष यह है कि केवल इन्द्रिय प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। न तो कोई तीर्थंकर प्रमाण है, न कोई वेद अथवा अन्य आगम प्रमाण है, न तर्क प्रमाण है, क्योंकि उन सबमें परस्पर विरोध है। और, देखिये तर्क तो अव्यवस्थित चीज है। तर्क वितर्कों की क्या व्यवस्था? तर्क करके झूठेको सच्चा बना दिया जा सकता, सच्चेको झूठा बना दिया जा सकता। तर्क तो यों है जैसे कि मोमकी नाक, उसे जहाँ चाहे जब चाहे मोड दें ऐसे ही तर्कमें जान नहीं होती, वह अव्यवस्थित है और आगम विभिन्न है। कोई कुछ कहता, कोई कुछ कहता, तो किसका प्रमाण माना जाय? एक दूसरेके प्रति सभी अप्रमाण हैं और कोई लोकमें सुगत, कपिल, जिन आदि कोई मुनी ऐसा नहीं है जिसके वचन प्रमाणभूत हों। सो बात यह है कि धर्मका जो तत्त्व है वह तो गुफामें रखा है, अर्थात् कुछ है नहीं। जैसे लोकमें कहते हैं ना कि अपनी बात ताखमें रख दो, मायने प्रमाण करने योग्य नहीं है। सो धर्मका तत्त्व तो गुफामें रखा हुआ है इस कारण यह बात निश्चित रखो कि जिस रास्तेसे महाजन गए हैं वही हमारा रास्ता है। न किसी आगमका विश्वास करो, न तर्कका, न किसी ऋषी संतके वचनका, न भगवानका, किन्तु जिस रास्तेसे महाजन गए हैं वही पंथ है। उसपर चलना चाहिए। क्योंकि सब बातें तो प्रमाणरूप नहीं हैं, किन्तु हमारे जो गुरु हैं, जिन्हें हम देवतारूप मानते हैं वे वृहस्पति ही वास्तवमें सम्वादक है, क्योंकि हमारे गुरुका प्रत्यक्षसिद्ध पृथ्वी आदिक तत्त्वोंका उपदेश है, इस कारण प्रमाण तो एक प्रत्यक्ष ही है, न आगम, न तर्क न सुगत आदिक ये सब कोई प्रमाणभूत नहीं हैं।

चार्वाकाभिमत नास्तिक्य पक्षका निराकरण—चारुवाकके उक्त कथन पर समाधान करते हैं कि उन चारुवाकोंका यह सिद्धान्त अप्रमाण है क्योंकि वह लोकापतिक है याने लोकमें जैसा अज्ञानी पुरुषोंका मन्तव्य है ठीक वैसा ही मंतव्य है, क्योंकि चारुवाकोंका जो मन्तव्य है कि सर्वज्ञ आदिक परोक्ष अर्थका अभाव सिद्ध करना सो सर्वज्ञ आदिक परोक्ष अर्थके अभावकी व्यवस्था इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाणसे नहीं बन सकती, क्योंकि बताइये कि सर्वज्ञ और प्रत्यक्षके अलावा अन्य प्रमाण ये सब नहीं हैं, यह तुमने कैसे जाना? यह बात प्रत्यक्षका तो विषय है नहीं। कोई कहे कि हमने तो प्रत्यक्षसे जान लिया कि सर्वज्ञ नहीं है तो सर्वज्ञका अभाव जानना क्या इस इन्द्रियका काम है अथवा अनुमान आदिक प्रमाण नहीं हैं यह जानना क्या प्रत्यक्षका काम है? यदि प्रत्यक्षसे सर्वज्ञका और अन्य प्रमाणका अभाव जान लिया जाय तो इसमें तो बड़ा दोष आता है। देखिये! यदि प्रत्यक्ष सर्वज्ञके, मुनिके, अथवा प्रमाणके, वेदादिक आगमके, अनुमानके और तर्कके अभावकी व्यवस्था कर लेता है यह हेतु देकर कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रत्यक्ष इन पदार्थोंमें प्रवृत्ति नहीं करता प्रत्यक्षसे यह जाना नही जाता इसलिए इन सबका अभाव है। यों यदि प्रत्यक्षसे सर्वज्ञका व प्रमाणान्तर आदिकका अभाव मानते हो तो फिर वह ही प्रत्यक्ष अन्य देश कालमें रहने वाले पुरुषान्तरके प्रत्यक्षका भी अभाव सिद्ध कर देगा। दुनियामें कितने मनुष्य हैं ? विदेशोंमें रहने वाले लोग तो हमारे प्रत्यक्षमें नहीं आ रहे तो फिर कह दो कि कोई दुनियामें है ही नहीं। हम हैं और हमारे पड़ोसके लोग हैं, बाकी तो लोग होते ही नहीं क्योंकि प्रत्यक्षसे उन्हें तो देख ही नहीं रहे। सो यदि प्रत्यक्षसे सर्वज्ञ प्रमाणान्तर आदिकके अभावकी व्यवस्था करेंगे तो, लोग भी नहीं हैं ऐसा भी प्रत्यक्षसे सिद्ध करलो और फिर दूसरेके प्रत्यक्षमें भले ही आये यह पृथ्वी लेकिन न तो उनके ज्ञानका प्रत्यक्ष है और न स सारी जमीन का प्रत्यक्ष है। तब फिर पृथ्वी आदिकका भी अभाव सिद्ध कर दो कि ये भी कुछ नहीं हैं। और, फिर सबसे बड़ा प्रसंग यह भी आ जायगा कि तुम लोग जो स्वयं बृहस्पतिको मान रहे हो चारुवाकोंका गुरु बृहस्पति है तो वह बृहस्पति इन इन्द्रियोंसे नहीं दिखता तो वह भी न रहा और बृहस्पति आदिकके द्वारा जो प्रत्यक्ष हो रहा वह भी न रहा तो सभी चीजोंका अभाव सिद्ध हो जायगा। इस कारण प्रत्यक्ष सर्वज्ञके अभाव को सिद्ध कर ही नहीं सकता। न किसी अन्य प्रमाणके अभावको सिद्ध कर सकता। प्रत्यक्षके ये विषय नहीं हैं इस कारण सर्वज्ञके अभाव और अन्य प्रमाणोंके अभावकी व्यवस्था नहीं की जा सकती है।

प्रत्यक्ष प्रमाणसे सर्वज्ञाभाव व प्रमाणान्तराभाव सिद्ध करनेके मन्तव्य का निराकरण—अब यहाँ चार्वाक कहते हैं कि बृहस्पतिका प्रत्यक्ष स्वयं बृहस्पति के प्रत्यक्षकी व्यवस्था कर देगा और पृथ्वी आदिक अपने विषयकी भी व्यवस्था कर देगा, क्योंकि बृहस्पतिके प्रत्यक्षकी उसमें प्रवृत्ति हो रही है, इस कारण न तो बृहस्पति के प्रत्यक्ष ज्ञानका अभाव होगा और न उस प्रत्यक्षके विषयभूत पृथ्वी आदिक पदार्थों का अभाव होगा। इसपर उत्तरमें कहते हैं कि जैसे चार्वाक यह कह रहे हैं कि बृहस्पतिका प्रत्यक्ष अपने और पर पदार्थका ग्रहण करने वाला है, और उनका प्रत्यक्ष स्वरूप उनके प्रत्यक्षसे जान लिया जाता है और पृथ्वी आदिक पदार्थ भी जान लिए जाते हैं, और यों हमारे गुरुके प्रत्यक्षका और प्रत्यक्षके विषयभूत पृथ्वी आदिक पदार्थों का अभाव नहीं होता है। तो यों सर्वज्ञ भी स्वसम्वेदनसे अपने स्वरूपका और स्वर्गादिक धर्म अधर्म आदिक विषयोंको प्रसिद्ध करले तो इसमें कौन सी आपत्ति है ? और, फिर कैसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध होगा ? साथ ही यह भी देखिये कि तर्क आदिक अन्य प्रमाण और हेतुवादरूप अनुमान प्रमाण तथा अहेतुवादरूप आगम प्रमाणके भी वे सर्वज्ञ व्यवस्थापक बन जायेंगे, फिर अन्य प्रमाणोंके अभावकी भी सिद्धि कैसे होगी ? अब यहाँ चार्वाक कहते हैं कि सर्वज्ञ अपना और परपदार्थोंका व्यवस्थापक है इसमें क्या प्रमाण है ! तो इसपर जैन आदिक उत्तर देते हैं कि अपने एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानने वाले चारुवाकके यहाँ प्रत्यक्षान्तर याने बृहस्पतिका प्रत्यक्ष स्व और पर

Version 1

को विषय करने वाला, इस बातमें भी क्या प्रमाण है ? तब चार्वाक कहते हैं कि हमारे बृहस्पतिका प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष और परपदार्थका ग्रहण करने वाला है यह तो हमारी गुरु परम्परासे प्रसिद्ध ही है। तो उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह सर्वज्ञके प्रत्यक्षसे भी स्व और परकी व्यवस्था बनी हुई है, यह बात गुरु परम्परासे ही प्रसिद्ध है इस कारण प्रत्यक्ष सर्वज्ञके अभावको अथवा प्रमाणान्तरके अभावको सिद्ध कर सकने वाला नहीं है। अन्यथा अर्थात् प्रत्यक्षसे ही यदि सर्वज्ञ आदिके व प्रमाणान्तर आदिके अभावको सिद्ध करने लगोगे तो इसमें ऐसे दोष आयेंगे कि जिनका परिहार करना ही कठिन है। फिर तो खरविषाण आदिक असत् पदार्थोंकी भी व्यवस्था माननी पड़ेगी। जो जिसका विषयभूत नहीं है वह उसको भी विषय करने लगे तब तो अटपट ज्ञान ज्ञेयका प्रसंग आ जायगा प्रत्यक्ष सर्वज्ञके अभाव और प्रमाणान्तरोंके अभावको विषय नहीं करता और फिर प्रत्यक्षसे ही सर्वज्ञका अभाव अथवा प्रमाणान्तरका अभाव मान बैठेंगे, तब फिर इस प्रत्यक्षसे गुरुका प्रत्यक्ष या अन्य देशका, पदार्थका प्रत्यक्ष भी न होनेसे उनका अभाव मानना होगा। तो इस कारण प्रत्यक्ष सर्वज्ञके अभावका और अन्य प्रमाणके अभावका साधक नहीं है अब चार्वाक यहाँ कहते हैं कि हम अनुमानसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कहने लगेंगे। सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि वह प्रत्यक्ष प्रमाणका विषयभूत नहीं है ऐसा हम अनुमानसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर देंगे, तो उत्तरमें कहते हैं कि आप अनुमानसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर ही नहीं सकते, क्योंकि प्रथम तो एक कोई अनुमान बाधारहित ऐसा है ही नहीं कि जिससे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध हो जाय। फिर दूसरी बात जो आपके लिए मुख्य लागू होती है वह यही है कि आपके मतमें अनुमान माना ही नहीं गया है, अनुमान आपके यहाँ असिद्ध है। असिद्ध अनुमानसे कुछ बात सिद्ध नहीं की जा सकती है। और, इस तरहसे तो फिर चूँकि आपने अनुमानको तो माना है अमुख्य अप्रमाण, गौण और प्रत्यक्षको ही आप एक मुख्य प्रमाण मानते हो तो जो गौण प्रमाण है उससे मुख्य प्रत्यक्ष प्रमाणका निश्चय नहीं हो सकता है।

चार्वाकको अनिष्ट व असिद्ध अनुमानसे सर्वज्ञाभावकी व प्रमाणान्तराभावकी सिद्धि करनेकी अशक्यता—अब यहाँ पर चार्वाक लोग कहते हैं कि अनुमान क्या सामान्य साध्यको सिद्ध करता है या विशेषरूप साध्यको ? यदि सामान्य साध्यका साधक अनुमानको मानते हो तो वह सिद्ध ही बात है। अनुमान सामान्यरूप है अर्थात् कोई प्रमाणताको लिए हुए नहीं है। एक साधारण बात है। तो सामान्य रूप अनुमान माननेपर तो सिद्ध साधनकी बात है और यदि विशेष साध्यका साधक अनुमान मानते हो तो उसकी सिद्धि ही नहीं, उसका अवगम ही नहीं है और फिर सभी अनुमानोंमें विरुद्ध हेत्वाभास दोष सम्भव हो जायगा। ऐसी बात कहनेपर उत्तरमें कहते हैं कि देखो कितने पागलपनकी बात है कि स्पष्ट यह कर कि सामान्य साध्यका साधक अनुमान सामान्य है अप्रमाण है सो सिद्धसाधन है विशेष साध्यको सिद्ध करनेमें हेतु विरुद्ध हो जाता है सो यों अनुमान सिद्ध नहीं हो सकता यों कहकर स्वयं अनुमान

http://www.jainkosh.org

प्रमाणको तो मानते नहीं, अनुमानका निराकरण करते हैं और अनुमानसे ही सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करना चाहते अथवा अनुमानसे अन्य प्रमाणका अभाव सिद्ध करना चाहते। जब अनुमान प्रमाण चारुवाक मानते ही नहीं तो अप्रमाण अनुमानसे किसी बातकी सिद्धि कैसे की जा सकती है ? तो यों अनुमानका निराकरण करते हुए चारुवाक लोग अनुमानसे सर्वज्ञके अभावकी, प्रमाणान्तरोंके अभावकी सिद्धि करते हैं तो ये कैसे वेसुध न कहे जायेंगे। प्रतिपत्ताको (चारुवाकको) जो प्रमाण प्रसिद्ध हो वही तो अपने प्रमेयका निर्णय करने वाला हो सकता है। अप्रसिद्ध प्रमाण और अप्रसिद्ध प्रमाण अपने प्रमेयका निश्चय करने वाले नहीं हो सकते। यदि अप्रसिद्ध प्रमाण किसी प्रमेयका निश्चय करने वाला हो जाय तो अप्रसिद्ध प्रमाण खरविषाण आकाश पुष्प आदिक असत् पदार्थोंकी भी व्यवस्था कर बैठे। इससे यह भी नहीं कह सकते कि अनुमान प्रमाणसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर दिया जायगा। या प्रमाणान्तरका अभाव मान लिया जायगा। अनुमान प्रमाण मानते ही नहीं चारुवाक लोग, फिर अनुमानसे कैसे कुछ सिद्ध कर सकते।

परप्रसिद्ध अनुमानसे सर्वज्ञादिकी असत्ता कहनेका विफल प्रयास— अब यहाँ चार्वाक कहते हैं कि जैन आदिकके यहाँ तो अनुमान प्रसिद्ध है ना ? वे लोग तो प्रमाण मानते हैं, तो दूसरोंके यहाँ प्रसिद्ध याने प्रमाणरूपसे माने गए अनुमानसे सर्वज्ञके अभावको सिद्ध कर देंगे, पर प्रसिद्ध अनुमान ही अन्य प्रमाणके अभावको सिद्ध कर देगा। तो इसपर उत्तर देते हैं कि आप जो परप्रसिद्ध अनुमानसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करना चाहते हो तो यह तो बतलावो कि जैन आदिकके यहाँ अनुमान प्रमाण सिद्ध है या प्रमाणके बिना ही है। चारुवाक लोग जैन आदिकके द्वारा प्रसिद्ध अनुमान से सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करना चाहते तो वे यह बतलायें कि वह अनुमान प्रमाण जैन आदिकके यहाँ प्रमाणसे सिद्ध है या नहीं ? यदि कहो कि जैनादिकके यहाँ प्रमाणसे सिद्ध है तो प्रमाणसे ही तो सिद्ध हो गया ना। जो बात प्रमाणसे सिद्ध है वह चाहे जैनोंके यहाँ सही, पर प्रमाणसे सिद्ध बात तो अपनेको भी असिद्ध न होना चाहिये। जो प्रमाणसे सिद्ध है वह तो सभीको सिद्ध है वादीको भी और प्रतिवादीको भी। तो जैसे जैन आदिक परके यहाँ अनुमान प्रमाणसिद्ध है उसी प्रकार चार्वाकको भी अनुमान प्रमाण सिद्ध मानना ही होगा क्योंकि जो प्रमाणसिद्ध बात है उसमें सभीको भी विवाद न रहना चाहिए। जैसे कि प्रत्यक्ष एक प्रमाणसिद्ध है ना, तो प्रत्यक्षके बारेमें न चार्वाक विवाद रखते हैं और न जैनादिक विवाद रखते हैं तो ऐसे ही जब अनुमान प्रमाणसिद्ध है तो जैसे जैन आदिकको अनुमानकी प्रमाणतामें विवाद नहीं है इसी प्रकार चार्वाक आदिक सभीको विवाद न होना चाहिये अन्यथा इसमें अतिप्रसंग दोष होंगे। कैसे कि जब प्रमाण सिद्धको भी विवादग्रस्त मान लेते हो तो प्रमाण सिद्ध प्रत्यक्षमें भी विवाद आ बैठेगा। और, जब प्रत्यक्षमें भी विवादकी विषयता आ पड़ेगी तो वह चार्वाकके यहां भी सत्य न माना जायगा। इस कारण यह बात मानना होगा

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि जो किसी परके यहाँ प्रमाणसे सिद्ध बात है, वह वादीके यहाँ भी प्रमाणसिद्ध होगा ही जैसे यहाँ अनुमान प्रमाण जैनादिकने प्रमाण सिद्ध मान लिया है तो वह चार्वाक को अपने लिए भी प्रमाणसिद्ध मानना होगा। जो चीज प्रमाणसिद्ध है वह तो सबको ही प्रमाण सिद्ध है। जैसे कि प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है तो सभीके लिए प्रमाणसिद्ध है और अनुमानको यहाँ पर चार्वाकोंने प्रथम विकल्पमें प्रमाणसिद्ध मान ही लिया है। इस कारण अनुमान चार्वाकवादीके लिए भी असिद्ध नहीं हो सकता। चारुवाकको भी अनुमान प्रमाण मानना ही पड़ेगा। अन्यथा अर्थात् यदि प्रमाणके बिना ही वह अनुमान है तो जैनोंके यहाँ भी अनुमान प्रमाण न रहेगा। तो जब किसीके यहाँ भी अनुमान प्रमाण न रह सका तो अनुमानसे कुछ सिद्ध तो नहीं कर सकते। तो यों भी अनुमानसे सर्वज्ञका अभाव भी सिद्ध नहीं कर सकते।

प्रमाणसिद्धको मान्य करनेकी व असिद्धको अमान्य करनेकी सर्वत्र घटिता—जो परके यहाँ प्रमाण सिद्ध नहीं है वह वादीके भी प्रमाण सिद्ध न होगा। और इस तरह फिर यह बात घटित हो जाती है कि जो प्रमाणके बिना सिद्ध है वह दूसरेके यहाँ भी सिद्ध नहीं है। जो बात बिना प्रमाणके है और प्रमाणसे व्यवस्थित होती ही नहीं वह तो किसीके यहाँ भी व्यवस्थित न होगा। जैसे कि जैन आदिकके द्वारा न माना गया पदार्थ वह प्रमाण बिना है इस कारणसे सभीके यहां भी असिद्ध है या जो जो भी बात प्रमाणके बिना न सिद्ध हो अर्थात् जिसमें प्रमाण लगता ही न हो, अप्रमाण हो वह तो परके लिए अप्रमाण है। और, यहाँ इस समय जैन आदिकने अनुमान प्रमाणके बिना मान लिया कि वह अप्रमाण है तो परके यहाँ भी अनुमान सिद्ध न हो सका तो फिर ऐसी असिद्धमें अनुमानके द्वारा सर्वज्ञका अभाव अथवा अन्य प्रमाणका अभाव कैसे सिद्ध किया जा सकता है ? अन्यथा जो बात चारुवाकने स्वयं नहीं माना है, ऐसा जो तत्त्व है, अनुमान है, परलोक है उसकी भी सिद्धि बन बैठेगी, क्योंकि अब तो अप्रमाणिक कथनसे भी जिस चाहेको प्रमाण मान लिया जाता है। तो चारुवाकके यहाँ भी अनभिमत तत्त्व सिद्ध हो जायगा।

प्रत्यक्षसे सर्वज्ञका अभाव माननेवालोंके सर्वज्ञत्वकी प्रसक्ति—देखिये ! ये चारुवाक एक इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाणसे सब सर्वज्ञरहित पुरुष समूहको जान रहे हैं तो क्या कर रहे कि यह इंद्रिय प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है इस सिद्धान्तका घात कर रहे, लो ये प्रत्यक्षप्रमाणसे इंद्रियज्ञानसे सारी दुनियाको जान रहे हैं। जब सारी दुनियाको जान लिया कि यहाँ सर्वज्ञ नहीं है तभी तो निषेध करेंगे कि कोई सर्वज्ञ नहीं है। तो सर्वज्ञ नहीं है, यह जाननेके लिए पहिले सारी दुनिया जाननी होगी। इस तरह जब सारी दुनिया जान ली तो ये चारुवाक ही सर्वज्ञ हो गए अथवा इन्द्रिय प्रत्यक्षका विषय सारी दुनियाका जानना बन गया। सो दोनों ही सिद्धान्तका जो कि चारुवाक लोग मानते हैं घात हो गया। जो स्वयं स्वीकार नहीं किया गया, अथवा जो अनिष्ट है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चारुवाकोंको, ऐसा अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष भी इन चार्वाकोंके यहाँ सिद्ध हो जायगा । जब एक इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाणमें ही सारी दुनियाको समस्त पुरुषसमूहको सर्वज्ञरहित जान लिया तो क्या मान लिया कि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष होता है कुछ । और, अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष चारुवाकोंको इष्ट है नहीं । इन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा सर्वज्ञ रहित पुरुष समूहका ज्ञान बन सकता । अत: अतीन्द्रिय प्रत्यक्षके बिना, इन्द्रिय प्रत्यक्षके ही द्वारा अन्य प्रमाणके अभावका ज्ञान जैसे नहीं बनता इसी प्रकार इन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा सर्वज्ञ रहित सारे विश्वका भी ज्ञान नहीं बनता । और यदि मान लिया जाय कि ये चारुवाक सब जगह सब समय जीवोंमें सर्वज्ञपनेके अभावके प्रत्यक्षसे जान रहे हैं तो इसके मायने यह हुआ कि यह चारुवाक स्वयं सर्वज्ञ हो गया और ऐसा माननेपर चारुवाकका यह कथन निराकृत हो जाता है कि सर्वज्ञ अथवा अनुमान आदिक प्रमाण हैं ही नहीं । स्वयं सर्वज्ञ बन गया । सर्वज्ञका अभाव कैसे सिद्ध करोगे ? अथवा प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है ऐसा जो चारुवाकका अभिप्राय है वह निराकृत हो गया । जब अन्य देश अन्य काल अन्य पुरुषोंके प्रत्यक्षको स्वयं प्रत्यक्षसे प्रमाण मान लिया तो वही सर्वदर्शी बन गया ।

अनुमानसे सर्वज्ञाभावकी सिद्धि करनेका यत्न करनेपर अनुमानमें प्रामाण्यकी प्रसिद्धि– देखिये ! लिङ्गजनित अनुमान जो कि सम्वादक है अर्थात् यथार्थ कथन करने वाला है, विवाद रहित है उस अनुमानसे यदि सर्वज्ञके अभावकी या किसी की सिद्धि करोगे तो इसके मायने है कि अनुमानमें प्रमाण आ गया । तात्पर्य यहाँ यह है कि चार्वाक अनुमान प्रमाणसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करना चाहते हैं । सो अनुमान प्रमाण यदि प्रमाणभूत है तो प्रमाणान्तरका अभाव कैसे सिद्ध किया जा सकेगा ? और, यदि अनुमान प्रमाण स्वयं प्रमाण नहीं है, अप्रमाण है तो अप्रमाणभूत अनुमानसे न तो सर्वज्ञके अभावकी सिद्धि की जा सकती न अन्य परिमाणके अभाव की सिद्धि की जा सकती । जैन आदिकके यहाँ प्रसिद्ध अनुमानके द्वारा कुछ भी सिद्धि करनेपर यह तो सिद्ध हो ही गया कि वह अनुमान प्रमाणभूत है, जिस अनुमानके द्वारा कुछ सिद्ध किया गया । तो जब अनुमानमें प्रमाणता सिद्ध हो गई तो चारुवाकके यहां भी अनुमानमें प्रमाणताकी सिद्धि होना अनिवार्य हो गया, उसे भी मानना ही पड़ेगा कि अनुमान भी प्रमाण है अन्यथा अर्थात् प्रमाणके बिना ही अप्रसिद्ध अनुमान होनेपर जैन आदिकके यहां भी उस अनुमानकी प्रसिद्धि न रहेगी । तो अप्रसिद्ध अनुमानसे सर्वज्ञका अभाव कैसे सिद्ध किया जा सकता है ? यदि अनुमान आदिक प्रमाणभूत मानकर फिर अनुमानसे सर्वज्ञका और प्रमाणान्तरका अभाव सिद्ध करते हो तो अनुमान स्वयं प्रमाणभूत हो ही गया ।

अनुमानमें प्रामाण्य माननेपर चार्वाकके सर्व अनभिमतोंकी सिद्धि— अब आगे देखिये ! जब अनुमान प्रमाणभूत हुआ तो उसके साथ तर्क आदिक ज्ञान भी प्रमाणभूत हो जाते हैं, क्योंकि अनुमान प्रमाण तर्क माने बिना सिद्ध नहीं होता । जब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तक साध्य साधनकी व्याप्ति स्वीकार न कर ली जाय तब तक साधनको साध्यका ज्ञापक नहीं कहा जा सकता, और साध्य साधनकी व्याप्तिको स्वीकार करनेका ही अर्थ है तर्कज्ञानको मान लेना, और तर्कज्ञान भी तब तक नहीं बन सकता जब तक सामान्यरूपसे साध्यसाधनका स्मरण न कर लिया जाय। जहाँ-जहाँ धूम होता है वहां-वहां अग्नि होती है, इस तरह जब तक अनेक जगहोंका साध्य-साधन स्मरणमें न आये तब तक तर्क ज्ञान नहीं बन सकता। तो लो यों स्मरण, प्रमाण भी मानना पड़ेगा। तो इस तरह अनेक प्रमाणोंकी सिद्धि अनिवार्यरूपसे हो ही जाती है। यों चारुवाकके यहाँ न तो प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है यह सिद्ध हो सकता अर्थात् अनुमान, तर्क आदि कोई प्रमाण नहीं हैं, यह सिद्ध नहीं हो सकता तथा सर्वज्ञ भी नहीं है यह भी सिद्ध नहीं हो सकता, परलोक आदिक नहीं हैं, यह भी सिद्ध नहीं हो सकता। तो चारुवाकको जो यह सन्तोष हो रहा है कि जब प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है तो न सुगत सर्वज्ञ है, न वेद प्रमाण है, न अन्य कोई प्रमाण भी है। और, तब इस जीवनमें खूब आरामसे जिया जाय, खूब खाया पिया जाय, मौज उड़ाया जाय, न परलोक है, न उसका कुछ फल है। इस तरह स्वच्छन्द बनकर अपने सांसारिक सुखोंका पोषण करनेका मंतव्य चारुवाकके यहाँ चारुवाक चारुवाक मनव्यके समर्थकोंका ही विघात करने वाला है। इस कारण चारुवाकका कहीं मंतव्य नहीं है। परलोक है, अनुमान प्रमाण है, उससे आत्माके स्वरूपकी सिद्धि है, निर्दोष आत्माकी सिद्धि है, पुण्य-पापके फलकी व्यवस्था है, इन तथ्योंका निराकरण नहीं किया जा सकता।

शून्यवादीका मंतव्य चार्वाक एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानता है, अन्य प्रमाणोंको अथवा सर्वज्ञ आदिक परोक्षभूत अर्थोंको नहीं मानता है। इसके निराकरणमें जब यह आपत्ति दी गई कि परके अप्रसिद्ध अनुमानसे प्रमाणान्तरके अभावको सिद्ध करें अर्थात् अप्रमाण अनुमानसे प्रमाणान्तरोंका अभाव सिद्ध करें, तब फिर इस तरह प्रत्यक्षमें भी प्रमाणता न रहेगी। प्रत्यक्ष भी अनेकोंके यहाँ अप्रसिद्ध है, क्योंकि कोई कोई लोग प्रत्यक्षको भी प्रमाण न मानने वाले हैं। तब चार्वाक सिद्धान्तका भी विघात हो जायगा। यह बात सुनकर तत्त्वोपप्लववादी कहते हैं कि वाह! यह तो बहुत ही भली कही। यह तो हमें इष्ट ही है। तत्त्वोपप्लववादका यह अर्थ है कि तत्त्व कुछ भी नहीं है। सब तत्त्वोंमें बाधा आती है, इसलिए सर्व कथन अप्रमाण हैं। एक शून्य ही वास्तविक तत्त्व है। इस तरहका तत्त्वोपप्लव मानने वाले दार्शनिक समस्त प्रत्यक्षादिक प्रमाण तत्त्वोंको और प्रमेय तत्त्वोंको बाधित ही मानते हैं। सो उनका कहना है कि प्रत्यक्ष भी प्रमाण मत बनो अनुमान आदिक भी प्रमाण मत बनो सर्वज्ञका अभाव भी सिद्ध है। यों एक शून्यमात्र ही वास्तविकता है।

शून्यवादके मन्तव्यका निराकरण—तत्त्वोपप्लववादियोंके उक्त कथनपर समाधान करते हैं कि उनका इस प्रकारका मंतव्य प्रमाणरहित है। तत्त्व कुछ नहीं है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शून्य है, इसकी सिद्धि करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। तब यही सिद्ध हुआ कि सब कुछ बाधित है। तत्त्व है नहीं कुछ, यह भी कहना अशक्य है। और, प्रमाणके बिना तत्त्वोपप्लव माना जाय तो तत्त्व सब अबाधित है यह कहना भी शक्य है। जैसे कि एक वचनमात्रसे ही तत्वोप्लवको मान लिया, सबको बाधित निराकृत असत् सिद्ध किया। और भी देखिये ! तत्त्वोपप्लव है ऐसा कहना किसी तत्त्वकी मुख्यता रखता है, उनके भी वचन मात्रसे ही यह सिद्ध हो बैठेगा कि तत्त्व कुछ अबाधित है ही। यदि कहोगे कि तत्त्व है, इसमें प्रमाण क्या ? यह तो अप्रमाण है तो अप्रमाणता तो अब दोनों जगह समान है। और अभी तत्त्वकी सिद्धिमें प्रमाण तुम मान भी नहीं रहे हो, इससे तत्त्वोपप्लव सिद्ध नहीं होता। और भी देखिये ! सर्वज्ञ अथवा प्रमाणान्तरका अभाव सिद्ध करने वाला प्रत्यक्ष तो है नहीं। अर्थात् समस्त तत्त्वोंका उप्लव सिद्ध कहने वाला प्रत्यक्ष तो हो नहीं सकता, क्योंकि प्रत्यक्षको परोक्षभूत अर्थके अभावका साधक माननेपर बहुतसे दोष आते हैं, फिर तो जो अत्यन्त निकटमें हो कुछ है वही मात्र कुछ है वही मात्र कुछ मान लें और बाकी सारी दुनियाके पुरुष ये कुछ भी न रहेंगे। तो प्रत्यक्षसे सर्वज्ञका और प्रमाणान्तरका अभाव सिद्ध नहीं होता इसी प्रकार अनुमान भी सर्वज्ञका और प्रमाणान्तरका अभाव सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि अनुमानकी असिद्धि है। देखिये! प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थको, अनुमेय पदार्थको, जो कि अत्यन्त परोक्षभूत हैं ऐसे भी पदार्थोंको, सबको जानने वाले सर्वज्ञके अभावको स्वयं असिद्ध प्रत्यक्ष व अनुमान कैसे सिद्ध कर सकता है, तथा प्रमाणान्तर अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान आगम आदिक सब अभावको स्वयं असिद्ध प्रत्यक्ष व अनुमान कैसे सिद्ध कर सकता है ? जिससे कि इनका अभाव सिद्ध हो और तत्वका उपप्लव सिद्ध हो। जब कि तत्त्वोप्लव के यहाँ कोई भी प्रमाण नहीं माना गया। न प्रत्यक्ष प्रमाण है न अनुमान प्रमाण है, तब उनकी इष्ट सिद्धि कैसे हो सकती है ? यदि स्वयं असिद्ध प्रमाणका विषय सर्वज्ञाभाव व प्रमाणान्तराभाव बन जाय याने प्रमाण कुछ न होनेपर भी उनका अभाव सिद्ध करोगे तो सभी प्रमाण और सभीका इष्ट तत्त्व जिन्होंने जो कुछ माना है उन सबकी ये बातें अपने आप सिद्ध हो जायें या जो कुछ भी प्रमाण हो वह सबको सिद्ध कर बैठे तो फिर तत्त्वोपप्लव रहा ही कहाँ ?

सर्वज्ञ प्रमाण आदिकके अभाव सिद्धिका शङ्का-समाधान—अब यहाँ तत्त्वोपप्लववादी कहते हैं कि हमारे यहाँ तो कोई प्रमाण सिद्ध है नहीं, क्योंकि वास्तविकता तो यह है कि तत्त्व कुछ है ही नहीं। लेकिन जैन आदिकके यहाँ जो प्रमाण सिद्ध है उस प्रमाणसे हम सर्वज्ञ तत्त्व प्रमाण सबके अभावको सिद्ध कर देंगे। इस शंकापर जैन शासनकी ओरसे समाधान किया जाता है कि भला यह तो बतलावो कि जिस परप्रसिद्ध प्रमाणके द्वारा सर्वज्ञ प्रमाण आदिकका अभाव सिद्ध करना चाहते हो वह परप्रसिद्ध प्रमाण परके यहाँ प्रमाणसे सिद्ध है या प्रमाणके बिना ही है ? यदि कहो कि वह प्रमाणसे सिद्ध है तो जो बात प्रमाणसे सिद्ध है परके लिए, वह अपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लिए भी प्रमाणसे सिद्ध कहलायेगा, क्योंकि जो प्रमाणसिद्ध बात है वह वादी और प्रतिवादी दोनोंके लिए मान्य होता है अन्यथा अर्थात् प्रमाणके बिना भी वह प्रमाण है तो फिर जैन आदिकके यहाँ भी प्रमाण मत मानो और फिर प्रमाणके बिना जो सिद्ध किया जाय वह सिद्ध भी न कहलायेगा। इस प्रकार ये तत्वोपप्लव आदिक स्वयं किसी एक प्रमाणके द्वारा अथवा अपनी प्रसिद्ध किसी धारणाके द्वारा जब यह जान रहे हैं कि विश्वमें समस्त पुरुष समूह समस्त तत्वोंको जानने वाले प्रमाणोंसे रहित हैं अर्थात् सर्वज्ञतासे रहित हैं, इतना जब तुमने निर्णय कर लिया अर्थात् जिसने यह जान लिया कि ये समस्त पुरुष सकल तत्वसे विरहित हैं यह जिस बुद्धिके द्वारा जाना वही तो प्रमाण है और इस तरह ये तत्वोपप्लव बड़ी सफाईके साथ सिद्ध करने वाले तत्वको मान ही बैठे और तत्त्वोप्लव सिद्धान्तका विघात कर ही बैठे, क्योंकि प्रमाणके स्वीकार करने पर तत्वोपप्लववादिता नहीं रहती। तत्व कुछ नहीं है। सब शून्य ही है इस प्रकारसे सिद्ध करनेके लिए जो भी आप प्रमाण देंगे तो आपने वह प्रमाण दिया ना, तो वही एक तत्त्व हो गया। फिर तत्त्वोपप्लवका सिद्धान्त कहाँ रहा ?

तत्त्वको बाधित सिद्ध करनेका शून्यवादीका प्रयास—अब बहुत विस्तार पूर्वक तत्त्वोपप्लववादी अपना पक्ष रख रहे हैं कि जो तत्त्वोपप्लव नहीं मानते हैं ऐसे जैन आदिकके यहाँ भी प्रमाणतत्त्व व प्रमेय तत्त्व प्रमाणसे सिद्ध है प्रमाणसे या प्रमाणके बिना ही प्रमाणतत्त्व व प्रमेयतत्वको माना जा रहा है। यदि उनके वे सब तत्व प्रमाण से सिद्ध हैं तो वह प्रमाण भी प्रमाणान्तरसे सिद्ध किया जा सकेगा। और फिर वह प्रमाणान्तर अन्य प्रमाणान्तरसे सिद्ध किया जा सकेगा, इस तरह इस सिद्धिके प्रसंगमें ही अनवस्था है फिर प्रमाण तत्वकी व्यवस्था कैसे बन सकती है। यदि यह कहो कि प्रथम प्रमाण द्वितीय प्रमाणका व्यवस्थापक बन जायगा और द्वितीय प्रमाण प्रथम प्रमाणका व्यवस्थापक बन जायगा तो इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है। प्रथम प्रमाण जब सिद्ध हो तब सिद्ध होगा द्वितीय प्रमाण और, जब द्वितीय प्रमाण सिद्ध हो तब सिद्ध होगा प्रथम प्रमाण, तो इस परस्परके आश्रयणसे एक भी प्रमाणकी व्यवस्था नहीं हो सकती। यदि कहो कि प्रमाणमें प्रामाण्यकी व्यवस्था स्वत: हो जाती है इस कारण इतरेतराश्रयका दोष नहीं आता, तो इसमें तो उस तत्वोपप्लववादकी ओरसे यह कहना है कि यदि प्रमाणमें प्रामाण्यकी व्यवस्था स्वत: हो जाती है तब फिर समस्त प्रवादियोंको प्रवक्ताओंको किसी भी कथनमें विवाद न करना चाहिए, क्योंकि विवाद करनेका अवसर कहाँ ? प्रमाणमें प्रामाण्यकी व्यवस्था स्वत: ही हो जाया करती है। यदि यह कहो कि किसी भी प्रमाणसे विवादका निराकरण हो जायगा तो वहाँ भी जब प्रमाणान्तरसे विवादका निराकरण हुआ तो उस प्रमाणान्तरमें भी विवाद उपस्थित होगा। तो उसका निराकरण करनेके लिए अन्य प्रमाणान्तर चाहियें। इस तरह यहाँ भी अनवस्था दोष इतने ही फैलावके साथ उपस्थित होता है। यदि इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विवादके निराकरणके प्रसंगमें भी यह कहोगे कि प्रथम प्रमाण दूसरे प्रमाणका विवाद मिटाता है, दूसरा प्रमाण प्रथम प्रमाणका व्यवस्थापक होगा तो इस तरह परस्पर विवादका निराकरण करनेपर वही अन्योन्य संश्रयणका दोष होगा। जिसको किसी तरह निवारण नहीं कर सकते। तो यह बात सिद्ध हुई कि प्रमाणतत्व और प्रमेयतत्व प्रमाणसे तो सिद्ध किया नहीं जाता है। यदि कहो कि प्रमाणके बिना ही प्रमाणतत्व और प्रमेयतत्वकी सिद्धि हो जायगी तो उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रमाणके बिना तत्व की व्यवस्था जब करने लगे तो तत्वोपप्लवकी भी व्यवस्था बन जायगी। उसका निराकरण नहीं किया जा सकता है।

प्रमाणतत्त्वके विचारमें प्रमाणकी प्रमाणताके हेतुके सम्बन्धमें शून्यवादी द्वारा पूछे गये चार विकल्प—अब यहां तत्ववादी कोई कहें कि देखिये! प्रमाणादिक तत्वकी व्यवस्था विचारके उत्तरकालमें हुआ करती है। और, विचार जिस किसी भी प्रकारसे किया जाय वह उलाहनाके योग्य नहीं हो सकता, क्योंकि विचार मात्रमें भी यदि उलाहना दिया जाय तो फिर कभी भी वचन व्यवहार नहीं बन सकता। सर्वथा वचनके अभावका प्रसंग आ जायगा। इसपर तत्वोपप्लववादी कहता है कि यदि विचार मात्रसे कोई व्यवस्था बना ली जाती है तो तत्वोपप्लववादियोंके यहाँ भी विचारके उत्तर कालमें तत्वोपप्लवकी उस ही प्रकार व्यवस्था बन जाय, क्यों कि विचार जिस किसी भी प्रकार किया जाता है चाहे प्रमाणके द्वारा हो अथवा प्रमाणके बिना हो, विचार उपालम्भके योग्य नहीं होते, यह बात भी सभीमें घटित हो जायगी अब विचारकी बात सामने रखनेपर चलिये! प्रमाणतत्व और प्रमेयतत्वमेंसे इस समय प्रमाणतत्वका ही विचार करें। बतायें तत्ववादी लोग कि प्रमाणकी प्रमाणता कैसे बनती है? क्या दोष रहित कारक समूहसे उत्पन्न किये जानेसे प्रमाणमें प्रमाणता बनती है या बाधारहितपना होनेसे प्रमाणमें प्रमाणता बनती है या प्रवृत्ति की सामर्थ्यसे प्रमाणमें प्रमाणता बनती है अथवा अविसम्वादकपना होनेसे प्रमाणमें प्रमाणता बनती है? इन चार विकल्पोंका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि मीमांसक सिद्धान्तमें माना गया है कि प्रमाणमें प्रमाणता इस कारण है कि वह प्रमाण निर्दोष चक्षु आदिक इन्द्रियसे उत्पन्न किया गया है। तथा वह प्रमाण बाधारहित है, तो यहाँ जो पूछा गया है इसमें दो प्रथम विकल्पोंकी बात तो मीमांसकोंको लक्ष्यमें रखकर पूछा गया है। तीसरा विकल्प किया गया है कि क्या प्रमाणमें प्रमाणता प्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे होती है? यह नैयायिक मतको लक्ष्यमें रखकर पूछा गया है। नैयायिक सिद्धान्तमें प्रमाणकी प्रमाणता प्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे मानी गयी है। जैसे जलका ज्ञान किया कि यह जल है तो यह जल है, इस प्रकारका ज्ञान प्रमाण कैसे बना कि लोग जाकर जलको पीते हैं, जलमें नहाते हैं। ज्ञानसे प्रवृत्तिमें सामर्थ्य बनती है, क्या इस कारण प्रमाणमें प्रमाणता आती है। चौथा विकल्प जो कहा गया है कि अविसम्वादकपना होनेसे प्रमाणमें प्रमाणता है क्या? यह प्रश्न क्षणिकवादियोंके लक्ष्यसे पूछा गया है। यों चार विकल्पों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में तत्त्वोपप्लव आदिक यह पूछ रहे हैं कि प्रमाणकी प्रमाणता कैसे बनती है।

अदुष्ट कारकों द्वारा उत्पाद्य होसेसे प्रमाणकी प्रमाणता होना माननेके प्रथम विकल्पकी शून्यवादी द्वारा मीमांसा—उक्त चार पक्षोंमेंसे यदि प्रथम पक्ष की बात कहते हो कि निर्दोष चक्षु आदिक इन्द्रियके द्वारा प्रमाण उत्पाद्य होनेसे प्रमाण की प्रमाणताका परिज्ञान होता है तो यही बताओ पहिले कि उन चक्षु आदिक कारकों में निर्दोषता है, निर्मलता है, यह बात कैसे परिज्ञात कर ली गई है ? पहिले यही सिद्ध करो कि ये चक्षु आदिक इन्द्रियाँ निर्दोष हैं, फिर इनके द्वारा जाने गए प्रमाणमें प्रमाणता है यह सिद्ध करनेका साहस करिये। तो पहिले तो यही बताओ कि चक्षु आदिक इन्द्रियकी निर्दोषता किस प्रमाणसे जानी गई है ? प्रत्यक्षसे तो नेत्रकी निर्मलता और स्वसम्वेदनके कारणभूत अतीन्द्रिय मनकी निर्दोषताका तो प्रत्यक्ष किया नहीं जा सकता, यह बात स्पष्ट ही है। कोई भी मनुष्य अपने नेत्रकी निर्मलताका कैसे प्रत्यक्ष कर सकता है ? और मनको भी प्रत्यक्षमें कहाँ किया जा सकता है ? तो प्रत्यक्षसे तो कारकोंकी निर्दोषता जानी नहीं जा सकती। और, इसी प्रकार अनुमानसे भी कारकों की निर्मलता नहीं जानी जा सकती, क्योंकि निर्मलताको समझाने वाले निर्मलताके अविनाभावी कोई साधन अर्थात् हेतु नहीं है। तो पहिले यही सिद्ध नहीं कर सकते कि प्रमाणकी उत्पत्तिकी कारणभूत इन्द्रियकी निर्दोषता है। यदि कोई यह कहे कि विज्ञान तो प्रमाणका कार्य है और वह लिङ्ग है अर्थात् अनुमानसे यह सिद्ध हो जायगा कि इन्द्रियाँ निर्दोष हैं, क्योंकि विज्ञान होनेसे। इस तरह यदि विज्ञानको हेतु बनाकर कारकोंकी निर्दोषता सिद्ध करोगे तो उसका उत्तर यह है कि विज्ञान दो प्रकारसे होता है विज्ञान सामान्य और विज्ञान विशेष अर्थात् प्रमाणभूत विज्ञान। तो उनमेंसे विज्ञान सामान्य तो कारकोंकी निर्दोषताका अव्यभिचारी नहीं है, क्योंकि जैसे सीपमें चाँदीका ज्ञान किया गया तो वहाँ भी ज्ञान कार्यलिङ्ग है, विज्ञानभूत है फिर भी कारणोंकी सदोषताको सिद्ध कर रहा है तब व्यभिचार हो गया अर्थात् विज्ञान सामान्यसे इन्द्रियादिक कारकोंकी निर्दोषता सिद्ध करना चाहा, सो विज्ञान सामान्य तो निर्दोष इन्द्रियसे उत्पन्न हुए ज्ञानमें भी है और सदोष इन्द्रियादिकसे उत्पन्न हुए संशय आदिक ज्ञानमें भी है। तब विज्ञान सामान्यरूप हेतु कारणकी निर्दोषता रूप साध्यका अव्यभिचारी कैसे रहा, इसमें अनैकांतिक दोष उपस्थित होता है। सो विज्ञान सामान्यसे तो कारकों की निर्दोषता सिद्ध नहीं हो सकती। यदि कहो कि प्रमाणभूत विज्ञानसे कारकोंकी निर्दोषता सिद्ध हो जायगी तो यह बताओ कि फिर उस लिङ्गभूत विज्ञानको प्रमाण भूतताका निश्चय कैसे होगा ? यदि कहो कि उस ज्ञानकी प्रमाणताका भी निश्चय निर्दोष कारणोंसे उत्पन्न हुआ है इस हेतुसे हो जायगा तो इसमें तो अन्योन्याश्रय दोष हो गया कि विज्ञानकी प्रमाणभूतता सिद्ध होनेपर यह सिद्ध होगा कि यह निर्दोष कारणोंसे उत्पन्न हुआ है और निर्दोष कारणोंसे उत्पन्न हुआ है यह सिद्ध होनेपर उस विज्ञानमें प्रमाणभूतताकी सिद्धि होगी। अतः अनुमानसे ज्ञानके कारकोंकी निर्दोषता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिद्ध नहीं हो सकती।

कारकोंकी गुणाश्रयतासे ही ज्ञानमें प्रमाणता माननेपर शून्यवादी द्वारा अपौरुषेय वेदवाक्यके समर्थनके प्रयासकी व्यर्थताका प्रतिपादन—अब तत्वोपप्लववादी अन्य दूषणोंको कह रहे हैं—देखिये ! चक्षु आदिक कारणोंको गुण और दोषोंका आश्रयभूत स्वीकार करनेपर उन कारणोंके द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होगा उस ज्ञानमें दोषकी आशंकाकी निवृत्ति नहीं हो सकती अर्थात् उसमें दोषका सन्देह रहेगा ही, क्योंकि ये चक्षु आदिक इन्द्रियाँ गुणके भी आश्रयभूत है। जैसे कि जो पुरुष गुणका आश्रयभूत भी है व दोषका भी आश्रयभूत है ऐसे पुरुषके वचनसे उत्पन्न होने वाला ज्ञान तो दोषकी आशंकासे निवृत्त नहीं रहता है याने जो पुरुष गुणसे युक्त है और दोषसे भी युक्त है, ऐसे पुरुषके वचन सुनकर जो बात ज्ञानमें लाई गई उस ज्ञानमें निःसन्देहता नहीं रहती है। ठीक भी हो, न भी ठीक हो, यदि कहो कि गुणके आश्रयरूपसे ही अर्थात् चक्षु आदिक इन्द्रियमें जो गुण हैं उन गुणोंका आश्रय करके ही सम्वेदनमें प्रमाणताका निश्चय होता है अर्थात् उस इन्द्रिय द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसमें दोषकी आशंका नहीं रहती, क्योंकि गुणयुक्त इन्द्रियके आश्रयसे यह ज्ञान प्रकट हुआ है। ऐसा कहनेपर यह भी कहा जा सकता है कि तब पुरुष भी कोई गुणके आश्रयभूत रहता है, गुणके आश्रयपना होनेसे उस पुरुषके वचन से उत्पन्न होने वाले ज्ञानमें भी दोषकी आशंका नहीं रह सकती। और, जब गुणके आश्रयभूत होनेके कारण उसका निर्णय बना, सो ज्ञानमें दोषकी आशंका न रही फिर अपौरुषेय शब्दके समर्थन करनेसे लाभ क्या है ? क्योंकि अपौरुषेय आगमका समर्थन इसीलिए तो कर रहे थे कि प्रमाणता आ जाय लेकिन अब तो गुणके आश्रयभूत पुरुषके वचनसे उत्पन्न होने वाले ज्ञानमें भी प्रमाणता आ गई।

मीमांसक द्वारा पुरुषमें गुणाश्रयताकी शङ्का किये जानेपर शून्यवादी द्वारा अपौरुषेय श्रुतिवाक्यमें मिथ्याज्ञानहेतुताका प्रतिपादन करके प्रमाणकी प्रमाणताके प्रथम हेतु विकल्पकी मीमांसाका उपसंहार—अब यहाँ मीमांसक कहते हैं कि पुरुषमें गुण है याने पुरुष गुणका आधारभूत है, यह निश्चय नहीं किया जा सकता है, क्योंकि दूसरेके चित्तमें रहने वाली परिणतियोंका जानना कठिन है। दूसरी बात यह है कि पुरुषके व्यापारमें सांकर्य देखा जाता है अर्थात् गुणवान् पुरुष हो तो भी अथवा गुण रहित हो तो भी उन सबमें एक समान व्यापार देखा जा सकता है गुणोंकी तरह निर्गुणकी भी चेष्टा बन सकती है इस कारण उनके व्यापारमें जब कि सांकर्य है याने जैसे दोषी पुरुषकी वचन चेष्टा है उसी प्रकार गुणी पुरुषकी वचनचेष्टा है तब फिर उस पुरुषके वचनसे प्रमाणताका निश्चय किया जाना अशक्य है, इसी कारण अपौरुषेय आगमका समर्थन करना कठिन है। मीमांसककी इस शंकापर शून्यवादी कहता है कि फिर तो चक्षुरादिक इन्द्रियाँ भी अतीन्द्रिय हैं ना तो उनमें भी

http://sahjanandvarnishastra.org/

कार्यकी संकरता बन जायगी। फिर चक्षु आदिक इन्द्रियमें गुणोंका आश्रयपना है इस नियमका निश्चय किया जाना शक्य नहीं है। याने जिस तरह दोष वाली इन्द्रियाँ दिखती हैं उसी प्रकार निर्मल इन्द्रिय भी दिखती हैं। दिखनेकी समानता दूषित और निर्मल इन्द्रियमें समानता है तो वहाँ भी सांकर्य हो जायगा और यह निर्णय न कर सकेंगे कि इस गुणवान इन्द्रियका यह व्यापार है और प्रमाणभूत है। मीमांसकका यहाँ यह मंतव्य था कि श्रुति वाक्य अपौरुषेय होनेके कारण दूषित कारणोंसे रहित है और इस कारण उस अपौरुषेय शब्दसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसमें प्रमाणपनेका निश्चय हो जायगा। उसके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि जब दिखता है कि किसी अपौरुषेय ग्रह उपराग आदिकके कारण याने किसीकी इन्द्रियमें जन्मसे ही दोष हो ललामी हो अथवा कोई ऐसी ग्रह बाधा हो तो उस कारणसे सफेद वस्त्रमें भी पीतपने का ज्ञान बन जाता है। तो इस तरहसे समझिये कि वेद अपौरुषेय भी हो तो भी मिथ्याज्ञानका कारणपना उसमें सम्भावित है, क्योंकि अपौरुषेय भी कुई बातें प्रमाणभूत नहीं होती, कुछ प्रमाणभूत भी होती तो निःसन्देह तो कुछ निर्णय न रहा ना। और देखिये ! अनादि कालसे इस जीवके मिथ्यात्व लग रहा है, तो जो अनादिसे लगा हुआ हो, जिस किसी पुरुषने न लगाया हो, ऐसा मिथ्या भाव क्या हितकारी प्रमाणभूत हो जायगा ? अपौरुषेयता होनेके कारण कुछ प्रमाणभूत बन जाय ऐसा नियम नहीं बन सकता है। तो जब अपौरुषेय भी श्रुतिवाक्य मिथ्याज्ञानका कारणभूत बन गया, तब फिर याज्ञिक लोगोंको उस शब्दजनित ज्ञानमें निःशंक प्रमाणताको निश्चय कैसे हो सकेगा ? इस कारण निर्मल इन्द्रियसे उत्पन्न होनेके कारण किसी ज्ञानमें प्रमाणता मानी जाय यह बात सिद्ध नहीं होती।

बाधानुत्पत्तिसे प्रमाणमें प्रमाणता माननेके द्वितीय विकल्पकी शून्यवादी द्वारा मीमांसा— यहाँ शून्यवादी मीमांसकोंके दो मंतव्योंका लक्षण लकर प्रमाणमें प्रमाणताका खण्डन कर रहा है। जिसमें एक हेतु तो यह पूछा गया था कि क्या निर्मल इन्द्रियसे ज्ञान उत्पन्न होता है इस कारण क्या उसमें प्रमाणता है ? इसका तो शून्यवादीने निराकरण कर दिया। अब दूसरा विकल्प यह किया था कि क्या बाधारहित होनेके कारण प्रमाणमें प्रमाणता मानी जाती ? मीमांसक लोग इन दो बातोंसे प्रमाणमें प्रमाणता मान रहे हैं एक तो निर्मल इन्द्रियसे ज्ञान उत्पन्न हुआ, दूसरे उस ज्ञानमें कोई बाधा नहीं आती है। प्रथम विकल्पका निराकरण करनेके बाद अब द्वितीय विकल्पका निराकरण किया जा रहा है। शून्यवादी कहते हैं कि बाधाकी अनुत्पत्तिसे प्रमाणमें प्रमाणता नहीं बन सकती, क्योंकि मिथ्या ज्ञानमें भी बाधककी अनुत्पत्ति सम्भव है। जैसे चमकिली रेतमें जलका ज्ञान किया गया तो यह ज्ञान मिथ्या ज्ञान है, क्योंकि पदार्थके विपरीत ज्ञान हो रहा है। है तो चमकिली रेत लेकिन जल जाना जा रहा तो इस मिथ्या ज्ञानमें जब तक मिथ्या ज्ञानका कारण दूर न हो जाय तब तक इस ज्ञानमें कोई बाधा ही नहीं आ रही। विपरीत ज्ञान वाला पुरुष विपरीत ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करनेकी दृढ़तासे उसका निर्णय बनाये हुए है उसे बाधा नहीं नजर आती। विपरीत ज्ञानमें बाधकपना तब बने जब कि उस पदार्थके निकट जानने वाले पहुँचें। जैसे दूरसे चमकीली रेतमें जलका ज्ञान हुआ, अब उस देशके निकट पहुँचे तो उसको यह ज्ञान दूषित समझमें आ जाता है और निर्णय करता है कि यह तो रेत है, जल नहीं है। तो मिथ्या ज्ञानका बाधक कारण है उस पदार्थके निकट देशमें पहुंच जाना। यदि पदार्थके निकट देशमें पहुंचे तो फिर वह मिथ्या ज्ञान नही रहता। तो मिथ्या ज्ञानमें भी जब स्वकारणकी विकलतासे बाधकज्ञान नही बनता यह जल नही है इस प्रकारका ज्ञान नहीं बनता तो मिथ्या ज्ञानमें भी प्रमाणपनेका प्रसंग आ जायगा। तो बाधाकी अनुत्पत्तिसे प्रमाणमें प्रमाणता आ जाती है यह कहना निःसन्देह बात नहीं है।

यथार्थग्रहण निबन्धनक बाधानुत्पत्तिकी अशक्य निश्चयता—अब यहाँ मीमांसक कहते हैं कि यथार्थ परिज्ञानका कारणभूत बाधाकी अनुत्पत्ति होना जो कि अप्रमाणमें असम्भव ही नहीं है ऐसी बाधाकी अनुत्पत्ति प्रमाणपनेको सिद्ध करने वाली होती है। इसपर शून्यवादी पूछता है कि उस बाधाकी अनुत्पत्तिमें यह कैसे निश्चय बना कि यह सत्य अर्थके परिज्ञानका कारणभूत है क्योंकि तुम यह कह रहे हो कि जो सत्य ज्ञानका कारणभूत बाधानुत्पत्ति है वह प्रमाणकी प्रमाणताका कारण है तो यह निर्णय कैसे कर लिया कि यहाँ जो बाधाकी अनुत्पत्ति हो रही है, कोई बाधक ज्ञान नहीं बन रहा है यह सत्य अर्थके ग्रहणके कारण है इसका निर्णय होना कठिन है। यदि कहो कि ज्ञानके प्रमाणपनेका निश्चय होनेसे यह निश्चय बन जाता है कि यह बाधानुत्पत्ति सत्यार्थके परिज्ञानके कारण बना है और सत्यार्थके परिज्ञानका कारण है। यों ज्ञानमें प्रमाणपनेका निश्चय करनेसे बाधानुत्पत्तिको सत्यार्थ ग्रहण निबन्धनक मानोगे तो इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है कि ज्ञानमें प्रमाणपनेका निश्चय होनेपर तो यह निर्णय बनता है कि यह बाधानुत्पत्ति यथार्थ परिज्ञानके कारण है और जब यह निर्णय बन जाय कि यह बाधानुत्पत्ति यथार्थ परिज्ञानके कारणसे है तब ज्ञानमें प्रमाणपनेका निश्चय होगा। इस तरह ज्ञानके प्रमाणपनेके निर्णयसे बाधानुत्पत्तिको सत्यार्थ ग्रहणका कारण माननेपर इतरेतराश्रय दोष आता है। अब यदि मीमांसक यह कहे कि अन्य प्रमाणसे प्रमाणोंमें प्रमाणपनेका निश्चय हो जायगा, उस ज्ञानमें प्रमाणपने का निश्चय हो जायगा, तो फिर बाधाकी अनुत्पत्तिसे प्रमाणके क्षणिकपनेके निश्चय की बात कहना बेकार है। इसमें बाधानुत्पत्तिके कारण प्रमाणकी प्रमाणता बताना मिथ्या है।

प्रामाण्यसाधनभूत बाधानुत्पत्तिकी उपपत्तिके साधनके विकल्पोंका शून्यवादी द्वारा निराकरण—और भी सुनिये! बाधाकी अनुत्पत्तिमें जो यथार्थ ग्रहणका कारणपना माना है तो बाधानुत्पत्तिमें यथार्थ परिज्ञानका कारणपना है यह बात क्या स्वतः ही निश्चय करली जाती है या किसी अन्य प्रमाणसे निश्चित की जाती है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यदि बाधाकी अनुत्पत्तिसे यथार्थ ग्रहण–निबन्धनता स्वत: ही निश्चय की जाती है तब फिर किसी भी परिज्ञानमें सन्देह न रहना चाहिए, किन्तु सन्देह तो देखा जाता है कि इस ज्ञानमें हमको जो बाधा नहीं दिख रही है, जो ज्ञान बनाया है, वह ज्ञान बराबर बना चला जा रहा है उसके विरुद्ध दूसरी बात नहीं जच रही है। ऐसी जो बाधाकी अनुत्पत्ति है वह क्या यथार्थ ग्रहण करनेसे हुई है या अपने कारणकी विकलतासे हुई है ? बाधाकी अनुत्पत्ति सम्यग्ज्ञानमें भी हुई है और मिथ्याज्ञानमें भी हुई है। रेतमें जलका परिज्ञान किया दूरसे देखकर, तो उस दूर देशमें ठहरे रहकर तो वह रेत जल ही जल ज्ञात होगा तो वहाँ भी बाधा तो न आई और समीचीन ज्ञानमें भी बाधा नहीं आती, वह यथार्थ ग्रहणके कारण नहीं आती। तो अब बाधाकी अनुत्पत्तिसे यह सन्देह हो गया कि क्या यथार्थ ग्रहण करनेसे बाधाकी अनुत्पत्ति है या उस देशमें पहुंचनेरूप आदिक बाधक कारण नहीं जुट पाया इस कारणसे बाधाकी अनुत्पत्ति है ? इस तरह दोनों ज्ञानोंका स्पर्श करने वाला तत्त्व, उभय कोटिका स्पर्श करने वाला ज्ञान बनानेसे अपने कारणकी विकलतासे अर्थात् निकट देशमें न पहुँचनेके कारण बाधक ज्ञानकी अनुत्पत्ति हुई है। रेतको जल जाना तो जल ही जल जाना जा रहा है, यह ज्ञान नहीं बन पा रहा कि यह तो रेत है जल नहीं। तो देखिये ! इस मिथ्याज्ञानमें बाधाकी अनुत्पत्ति अपने कारणकी विकलतासे हुई है और निकट देशमें पहुंचनेपर अथवा किसी पदार्थके निकट देशमें खड़े हुए हैं और जैसा वह पदार्थ है वैसा ही ज्ञान कर लिया गया तो यहाँ जो सम्यग्ज्ञान हुआ है वह उस सच्चे ज्ञानके कारणकी बात बननेपर हुआ है या पहिले जो रेतमें जलका ज्ञान हो रहा था तो दूर खड़े–खड़े जब रेतमें जलका ज्ञान हो रहा था जब निकट देशमें पहुंच गए तो बाधक ज्ञान बन बैठे कि यह जल नहीं है, यह तो रेत है। तो यहां जो बाधक ज्ञानकी उत्पत्ति हुई है सो देखो ! उस बाधक ज्ञानका कारण बननेपर हुई है याने निकट देशमें पहुँचनेपर हुई है, इसमें सन्देह बन गया कि बाधा अनुत्पत्ति क्या यथार्थ ग्रहणके कारणसे हुई है या बाधक ज्ञानके कारणकी विकलतासे हुई है ! तब बाधानुत्पत्तिसे प्रमाणकी अप्रमाणताका निर्णय नहीं दे सकते।

अर्थज्ञानके अनन्तर ही या सर्वदा बाधानुत्पत्तिसे प्रमाणकी प्रमाणताके विकल्पोंका निराकरण—अब यहाँ शून्यवादी पुन: कह रहे हैं कि पदार्थके ज्ञानके अनन्तर हो होनेवाली बाधानुत्पत्ति उस ज्ञानकी प्रमाणताकी व्यवस्था करता है या सदा ही रहनेवाली पदार्थ ज्ञानमें बाधाकी अनुत्पत्ति उसकी प्रमाणताका निश्चय करता है ? यहां दो विकल्प किए गए हैं कि क्या पदार्थज्ञानके बाद ही बाधाकी अनुत्पत्ति होना ज्ञानमें प्रमाणता निर्णीत करता है या सदाकाल ही बाधाकी अनुत्पत्ति होना सो प्रमाणकी प्रमाणताका निर्णय करता है ? यदि कहो कि पदार्थज्ञानके बाद ही बाधाकी अनुत्पत्ति हो उसमें प्रमाणता जानी जाती है तो पदार्थके ज्ञानके बाद ही बाधाकी अनुत्पत्ति होना तो मिथ्याज्ञानमें भी देखा जाता है। रेतमें जलका ज्ञान किया और उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानके बाद कोई बाधा भी नजर न आई । जल ही जल जाने जा रहे हैं तो ज्ञानके बाद ही बाधाकी अनुत्पत्ति होनेसे प्रमाणमें प्रमाणता माननी पड़ेगी । यदि कहो कि सर्वदा बाधाकी अनुत्पत्ति होनेसे उससे ज्ञानकी प्रमाणताका निश्चय होता है । जो पदार्थ ज्ञान किया गया है उस ज्ञानमें कोई भी बाधा न आये अर्थात् उससे विपरीत दूसरा कोई ज्ञान कभी न बने, उससे ज्ञानकी प्रमाणताका निश्चय होता है । ऐसा कहना तो बिल्कुल असंगत है, क्योंकि कभी भी इस ज्ञानमें बाधा नहीं आ सकती । ऐसा ज्ञान किया जाना अशक्य है । भले ही कुछ दिन, कुछ महीने उस ज्ञानमें बाधा आये लेकिन वर्षों और युगोंके बाद भी उसके ज्ञानमें बाधाकी उत्पत्ति देखी जाती है । जैसे किसी पुरुषका मिथ्याज्ञान बहुत वर्षों तक रहता है, बादमें उसे विदित होता कि वह ज्ञान झूठा था, तो सदा काल बाधाकी अनुत्पत्ति रहे इससे ज्ञानमें प्रमाणता माननेपर तो यह निर्णय कभी सम्भव ही न हो सकेगा कि सदा ही इसमें बाधा न आयगी । बहुत चिरकाल तक भी बाधकज्ञानकी उत्पत्ति न हो फिर भी अपने कारण की विकलतासे भविष्यमें किसी भी समय बाधाकी अनुत्पत्ति न होगी, यह निश्चय नहीं किया जा सकता । बताओ बहुत काल तक बाधानुत्पत्ति होनेपर भी आगे यह कभी भी बाधा न आयगी इस ज्ञानमें, यह निश्चय आप किस विधिसे कर रहे हैं । तो यह विकल्प भी असंगत है कि सदा काल बाधक ज्ञानकी अनुत्पत्ति होनेसे प्रमाणमें प्रमाणताका निश्चय होता है और फिर देखिये ! किसी मिथ्याज्ञानमें किसी तरह बाधा न भी उत्पन्न हो बाधक कारणकी विकलतासे तो इतने मात्रसे कि सदा काल यहाँ बाधा की अनुत्पत्ति है, पदार्थ ज्ञानमें प्रमाणता न बन जायगी । कोई कोई मिथ्याज्ञान ऐसा होता है कि उसमें बाधा आती ही नहीं । जीवनभर बाधा न आयगी । तो इससे वह ज्ञान प्रमाणभूत तो न हो जायगा । जैसे देहको माना कि यह मैं आत्मा हूँ तो यह किन्हींकी दृष्टिसे मिथ्याज्ञान है ना, और यह मिथ्या ज्ञान यावत जीव बना रहता है ।

किसी देशमें या सर्वत्र स्थित प्रतिपत्ताके बाधानुत्पत्तिसे प्रमाणकी प्रमाणताके दोनों विकल्पोंका निराकरण अब और भी विचारिये कि किसी देशमें स्थित जाननहार पुरुषकी, याने जो दूरमें खड़ा हो स्थित हो उसकी जो बाधानुत्पत्ति है वह अर्थज्ञानमें प्रमाणताका कारण है या सभी जगह चाहे दूरमें या समीपमें हो सभी जगह स्थित ज्ञाताकी बाधानुत्पत्ति क्या प्रमाणताका कारण है ? यहाँ दो विकल्प पूछे गए कि बहुत दूर देशमें स्थित पुरुषको पदार्थ ज्ञानमें बाधानुत्पत्ति हो रही है यों क्या दूर देशमें खड़े पुरुषकी बाधानुत्पत्ति ज्ञानमें प्रमाणताका कारण है या निकट या दूर कहीं भी सर्वत्र देशमें खड़े हुए पुरुषके ज्ञानकी बाधानुत्पत्ति ज्ञानकी प्रमाणताका कारण है ? यदि कहो कि दूर देशमें खड़े हुए पुरुषके ज्ञानमें बाधानुत्पत्ति प्रमाणकी प्रमाणताका कारण है तब तो किसी भी पुरुषके मिथ्या ज्ञानमें भी प्रमाणपना आ जायगा, क्योंकि वहाँ बाधक कारण विकलता है और वैसा ही ज्ञान बराबर बनाया जा रहा है । यदि द्वितीय विकल्प लेते हो कि समीपमें खड़े हुए ज्ञाता पुरुषके

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानमें बाधानुत्पत्ति ज्ञानमें प्रमाणताका कारण है, तो यह बात यों नहीं बन सकती कि दूरमें स्थित किसी पुरुषकी बाधानुत्पत्ति होनेपर भी समीपमें बाधा उत्पत्ति भी बन सकती है क्योंकि बाधक ज्ञान जिसके भी बन जाय वह कहीं भी बन सकता है। दूर देशमें खड़ा हुआ पुरुष भी यह जान जायगा कि यह ज्ञान झूठा है और समीपमें खड़ा हुआ पुरुष भी कहो न जान पाये कि यह ज्ञान मिथ्याज्ञान है तो दूरमें बाधा न हो और समीपमें बाधा आ जाय और समीपमें बाधा न हो दूरमें बाधा आ जाय। इस कारण यह कहना असंगत है कि बाधानुत्पत्तिके कारण प्रमाणमें प्रमाणता आती है। इस प्रकार मीमांसकके इन दो मंतव्योंमें कि निर्मल कारणसे उत्पन्न होनेसे प्रमाणता होती है और बाधानुत्पत्तिसे प्रमाणता होती है, ये दोनों विकल्प बाधित होजाते हैं।

किसीकी बाधानुत्पत्ति या सबकी बाधानुत्पत्तिसे प्रमाणका प्रमाणता बननेके दो विकल्पोंमें शून्यवादी द्वारा प्रमाणके प्रामाण्यकी उपपत्तिका निराकरण—शून्यवादी कह रहे हैं मीमांसकोंसे कि बाधानुत्पत्तिके द्वारा जो प्रमाणकी प्रमाणता कहते हो तो वह बाधानुत्पत्ति क्या किसीके होना मानी गई है अथवा सबके मानी गई है? अर्थात् किसीको बाधानुत्पत्ति हो क्या इतने मात्रसे ज्ञानमें प्रमाणता आती है या सबको बाधानुत्पत्ति हो तो प्रमाणमें प्रमाणता आती है? यदि कहो कि किसीको बाधानुत्पत्ति होना ज्ञानकी प्रमाणताका कारण है तो यह बात उल्टे ज्ञानमें भी लगाई जा सकती है अर्थात् विपर्यय ज्ञानमें भी किसीको बाधानुत्पत्ति होती है इससे विपरीत ज्ञानमें भी प्रमाणता आ जायगी। तथा मरीचिका आदिकमें जलका ज्ञान होनेके सम्बन्धमें अन्य देशमें गमन आदिकके द्वारा बाधाकी अनुत्पत्ति होनेपर भी प्रमाणता न आयगी इससे यह नहीं कह सकते कि किसीको बाधा उत्पन्न हो इतनेमात्रसे ज्ञानमें प्रमाणता आती है। यदि कहो कि सभी मनुष्योंका बाधानुत्पत्ति हो तो उससे अर्थज्ञानमें प्रमाणता आती है, यह बात भी कहना युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि छद्मस्थ जीव, अल्पज्ञ लोग ये जान नहीं सकते कि सभी प्राणियोंको इस सम्बन्धमें बाधानुत्पत्ति है और यदि अल्पज्ञ पुरुष सबकी बाधानुत्पत्तिको जाननेमें समर्थ हो जाय तब उनमें ही सर्वज्ञताकी प्रसक्ति हो जायगी इस तरह असर्वज्ञताके व्यवहारका अभाव बन जायगा। समस्त देश, समस्तकाल और समस्त प्राणियोंकी अपेक्षासे बाधकके अभावका निर्णय करना बन नहीं सकता, इस कारण सम्वेदन ज्ञानमें प्रमाणता बाधारहित होनेके कारण नहीं कही जा सकती है।

यौगाभिमत प्रवृत्तिसामर्थ्यमें प्रमाणकी प्रमाणता माननेका शून्यवादी द्वारा निराकरण—उक्त प्रसंगमें शून्यवादी दो विकल्पोंसे प्रमाणकी प्रमाणताका निराकरण कर चुके हैं। अब तृतीय विकल्पके सम्बन्धमें कह रहे हैं कि सामर्थ्यसे भी प्रमाणमें प्रमाणता नहीं बतायी जा सकती है। क्योंकि इसमें अनवस्था दोषका प्रसंग आता है प्रवृत्तिकी सामर्थ्यका अर्थ क्या है क्या फलसे सम्बंध हो जाना इसका नाम प्रवृत्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का सामर्थ्य है या सजातीय ज्ञानकी उत्पत्ति होना इसका नाम प्रवृत्तिका सामर्थ्य है ? इन दो विकल्पोंका भाव यह है कि प्रवृत्तिका सामर्थ्य फलसे अभिसम्बन्ध होना पक्षिल भाष्यमें लिखा है तो फलका सम्बन्ध होनेका नाम क्या प्रवृत्तिका सामर्थ्य है अथवा खान, पान आदिकके द्वारा उस पुरुषमें जो पूर्वज्ञानमें सदृश सजातीयज्ञान उत्पन्न हुआ है क्या वह प्रवृत्तिका सामर्थ्य है। शून्यवादी ही कह रहे हैं कि यदि फलको सम्बन्ध होनेका नाम प्रवृत्ति सामर्थ्य है तो यह बतलावो कि वह फलका सम्बन्ध होना क्या ज्ञात होकर ज्ञानमें प्रमाणताको जनाता है ?

अवगत या अनवगत होकर फलाभिसम्बन्ध ज्ञानकी प्रमाणताको जना दे इनविकल्पोंमें भी शून्यवादी द्वारा आपत्तिप्रदर्शन—यदि कहो कि अज्ञात होकर फलाभिसम्बन्ध ज्ञानकी प्रमाणताको जनाता है तो सुनिये वह फलके साथ सम्बन्ध होना ज्ञानकी प्रमाणताको सिद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि इसमें बहुत दोष आता है। फिर तो पर्वत आदिकमें धुवेंका ज्ञान न भी हो। धुवाँ साधन न भी हो तो भी अग्निका निश्चय कर बैठना चाहिए क्योंकि अब अनवगत फल सम्बन्ध ज्ञानकी प्रमाणताको सिद्ध करने वाला मान लिया गया है। तो अनवगत होकर फलाभिसम्बन्ध ज्ञानकी प्रमाणताको नहीं जना सकता। यदि कहो कि वह अवगत होकर फलसम्बंध ज्ञानकी प्रमाणताको जना देगा तो बतलावो कि वह अवगत कैसे हो ? क्या उस ही प्रमाणसे जाना गया या अन्य प्रमाणसे वह फल सम्बन्ध जाना गया, उस ही प्रमाणसे फल सम्बन्ध जाना गया, यह तो यों नहीं कर सकते कि ऐसा कहनेमें फिर इतरेतराश्रय दोष आता है। वह इस तरह कि फलके साथ हुए अभिसम्बन्धका ज्ञान होनेपर तो उस हुए ज्ञानकी प्रमाणताका निश्चय होगा और उस ज्ञानकी प्रमाणताका निश्चय होनेपर विज्ञानके द्वारा फलके अभिसम्बन्धका ज्ञान बनेगा तो यों ही प्रमाणका फल सम्बन्धका ज्ञान माननेपर इतरेतराश्रय दोष आता है। यदि कहो कि अन्य प्रमाणसे वह जान लिया जायगा तो यह बतलावो कि वह अन्य प्रमाण किसके द्वारा प्रमाणताकी व्यवस्थाको प्राप्त हो ? अर्थात् उस अन्य प्रमाणमें प्रमाणता किस प्रमाणके द्वारा आयी ? यदि कहो कि प्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे आयी तो वह भी प्रवृत्ति सामर्थ्य यदि फलके साथ अभिसम्बन्धरूप है और अवगत हो कर या अनवगत हो कर ज्ञानकी प्रमाणताको जनाता है तो इसके व्यवहारमें २—३ प्रसंग उलट—उलट कर घटित होनेका चक्रक दोषका प्रसंग होगा वह चक्रक दोष इस प्रकार है कि वह प्रवृत्ति सामर्थ्य यदि फलके साथ अभिसम्बंध रूप है तो वह ज्ञात होकर या अज्ञात होकर ज्ञानकी प्रमाणताको जनाता है? यदि अज्ञात होकर ज्ञानकी प्रमाणताको जनाता है तो इसमें अतिप्रसंग दोष आता है और यदि वह ज्ञात होकर जनाता है तो उस ही प्रमाणसे ज्ञात होकर प्रमाणकी प्रमाणताको जनाता है या अन्य प्रमाणसे ज्ञात होकर प्रमाणकी प्रमाणताको जनाता है। उस ही प्रमाणके द्वारा ज्ञात होकर प्रमाणकी प्रमाणताको तो फलाभिसम्बन्ध नहीं जना सकता, क्योंकि इसमें इतरेतराश्रय दोष है। यदि अन्य प्रमाणसे जाना हुआ वह प्रमाणताको बताये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो बतलावो कि वह अन्य प्रमाण किस प्रमाणके द्वारा प्रमाणभूत हुआ ? यदि कहो कि प्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे, तो इतना ही प्रश्न यहाँ लगाया जायगा और यों चक्रक दोषका प्रसंग आता है इस तरह प्रवृत्तिका सामर्थ्य फलके साथ अभिसम्बन्धरूप सिद्ध नहीं हो सकता। इस कारण इस विधिसे सजातीय ज्ञानकी उत्पत्तिरूप प्रवृत्तिसामर्थ्यसे भी ज्ञानकी प्रमाणताका ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि सजातीय ज्ञानका प्रथम ज्ञानसे प्रामाण्य निश्चित होनेपर परस्पर इतरेतराश्रय दोष ज्योंका त्यों उपस्थित होता है। यदि अन्य प्रमाणमें उसकी प्रमाणताका निर्णय होता है तो इसमें अनवस्था दोष आता है।

अवगत या अनवगत ज्ञेयकी स्थितिमें हुई ज्ञानप्रवृत्तिसे प्रमाणके प्रामाण्यकी उपपत्तिका निराकरण— यहाँ फिर तत्त्वोपप्लववादी पूछ रहा है उन मीमांसकोंसे कि ज्ञाताकी प्रवृत्ति, ज्ञेय पदार्थोंके स्थानपर जो पहुँचनेकी होती है वह ज्ञेय के जाननेपर होती है या ज्ञेयके न जाननेपर ही हो जाती है अर्थात् ज्ञाता जो ज्ञेय पदार्थों के निकट पहुँच गया तो ज्ञेयके जाननेपर पहुँचा या न जाननेपर ही पहुँचा ? न जानने पर पहुंचा यह बात तो एक दम असंगत है, क्योंकि इस तरह सभी प्रमेयोंमें सभीकी प्रवृत्ति हो पड़ेगी, क्योंकि अब तो बिना जाने भी ज्ञेय पदार्थोंके निकट पहुँचना मान लिया गया है। तो बिना जाने तो प्रवृत्ति बनी नहीं। यदि कहो कि उस प्रमेयके जान लेनेपर प्रवृत्ति हुई है तो यह बतलाओ कि किस ज्ञानसे उसने प्रमेयका ज्ञान किया है ? क्या निश्चित प्रामाण्य वाले ज्ञानसे ज्ञेयका ज्ञान किया है ? यदि कहो कि निश्चित प्रामाण्य वाले ज्ञानसे ज्ञेय पदार्थका ज्ञान किया है तो इसमें इतरेतराश्रय दोष हो आता है, क्योंकि प्रवर्तक ज्ञानकी प्रमाणताका निश्चय होनेपर तो उससे प्रमेयका ज्ञान बनेगा और प्रमेयके ज्ञान होनेपर प्रवृत्तिकी सामर्थ्य- उसकी प्रमाणताका निश्चय होगा। यदि कहो कि अन्य प्रमाणसे प्रमेयज्ञान बन जायगा तब फिर प्रथम ज्ञान होना व्यर्थ हो गया। प्रथम ज्ञानने कुछ नहीं किया। प्रथम ज्ञानसे जाने हुए उस अर्थ ज्ञानमें प्रमाणता तो अन्य प्रमाणसे आयी तब प्रथम ज्ञानका प्रयोजन कुछ न रहा और वही प्रश्न यहाँ भी उपस्थित हो जाता कि उस प्रमाणान्तरसे भी हुई प्रामाण्यप्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे जो उस ज्ञाताकी प्रवृत्ति हुई वह प्रमाणान्तरसे हुई या अप्रमाणसे हुई आदिक प्रश्न अब भी आपत्ति करने वाले उत्पन्न होते हैं। यदि कहो कि अनिश्चित प्रामाण्य वाले ज्ञानमें प्रमेयकी प्रतिपत्ति होती है तो ज्ञेयका ज्ञान अनिश्चित प्रामाण्य वाले प्रमाणसे हुआ है तब फिर प्रामाण्यका निश्चय करना ही व्यर्थ है। स्वयं अनिश्चित प्रामाण्य वाले ज्ञानसे प्रमेयकी प्रतिपत्ति और प्रवृत्ति सिद्ध हो गई।

संशयसे प्रवृत्ति माननेपर आपत्तिप्रदर्शन— यदि कहो कि संशयसे प्रवृत्ति देखी जाती है इसलिए दोष न होगा, तो ऐसी शंका करने वाले नैयायिकसे शून्यवादी कह रहे हैं कि फिर प्रमाणकी परीक्षा करना किसलिए है ? जब प्रवृत्ति संशयसे भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दे ी जाती है तो प्रमाणकी परीक्षाका क्या प्रयोजन रहा ? यहाँ इस विकल्पकी मीमांसा नैयायिक सिद्धान्तको लक्ष्यमें लेकर की जा रही है। नैयायिक मानते हैं कि प्रमाणमें प्रमाणता प्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे हुई है तो उसी विकल्पमें ये प्रश्नोत्तर चल रहे हैं जब संशयका प्रवृत्ति करना मान लिया गया तब फिर इसमें दोष क्या है ? किसलिए प्रमाणकी परीक्षा करते हो ? यदि कहो कि लोकसमाचारकी सार्थकताके लिए प्रमाणकी परीक्षा की जाती है तो शून्यवादी कहता है। कि प्रमाण प्रमेयरूप जो व्यवहार है यही है लोकसमाचार। सो प्रमाण प्रमेयरूप यह व्यवहार निर्विवाद कैसे प्रसिद्ध होता है ? स्वत: या परत: ? जिस लोकवृत्तिके अनुवादके लिए अर्थात् प्रमाणप्रमेयरूप लोकव्यवहारकी सार्थकताके लिए प्रमाण शास्त्रोंकी रचना की जा रही है वह लोकव्यवहार स्वत: ही प्रसिद्ध हुआ अर्थात् स्वरूपसे ही सिद्ध हुआ तो प्रमाणसे पदार्थकी प्रतिपत्ति करनेपर प्रवृत्तिका सामर्थ्यसे प्रमाण अर्थवान हुआ यों फिर परसे प्रामाण्य बतानेका विरोध आयगा। जब मान लिया कि प्रमाण प्रमेयका व्यवहार स्वयं ही हो रहा तब फिर ऐसा जो कथन किया गया है कि प्रमाणसे पदार्थके ज्ञानके प्रसङ्गमें प्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे ही वह प्रमाण सार्थक है, तो उसका विरोध हो जायगा, क्योंकि इस कथनमें तो प्रामाण्य परत: सिद्ध किया और विकल्प चल रहा है स्वत: प्रामाण्य माननेका। देखिये ! स्वत: प्रसिद्ध प्रमाण प्रमेयरूप लोकव्यवहार ही उसी प्रकार बताया जानेके लिए युक्त है आपके प्रमाणशास्त्रमें अन्यथा प्रसिद्ध प्रमाण प्रमेयरूपका कथन युक्त नहीं है, अतिप्रसंग होनेसे। तो जब स्वत: माना तब स्वत: ही कहना चाहिये था, फिर परत: प्रामाण्यका अनुवाद क्यों किया गया ?

स्वत: व परत: प्रामाण्य मानने वालोंके मन्तव्यकी शून्यवादी द्वारा मीमांसा अब यहाँ मीमांसक कहता है कि जिस प्रकारसे हम लोगोंके द्वारा कहा जाता है, जैसे कि यहाँ परसे हुए पद्धतिसे कहा जाता है तो उस ही प्रकार फिर लोकवृत्ति प्रसिद्ध हो गयी। स्वत: न हुआ फिर। यदि ऐसा कहोगे तो यह बात यों युक्त नहीं होती कि सर्व प्रमाणोंकी प्रमाणता स्वत: है, ऐसा अन्य मीमांसक आदिक पुरुषोंने भी इस प्रमाण प्रमेय व्यवहारका कथन किया है तब सर्व प्रमाणोंकी स्वत: ही प्रमाणता होगी, ऐसी ही प्रसिद्धिका प्रसंग होगा। और, वह स्वत: प्रामाण्य हुआ इस प्रकारका अनुवाद यदि कहो कि वह मिथ्या अनुवाद है तब फिर नैयायिकोंका भी वह परत: प्रामाण्य करनेका अनुवाद मिथ्या क्यों न हो जायगा ? यदि स्वत: प्रामाण्यका कथन मिथ्या कहते हो तो परत: प्रामाण्यका कथन भी मिथ्या हो जायगा। यहाँ शून्यवादी इसका खुलासा कर रहा है कि परत: प्रामाण्य माननेमें विरोध कैसे आता है। नैयायिक कहता है कि परत: प्रमाणरूपसे ही प्रमाण प्रमेय व्यवहार प्रसिद्ध है तो इस पर मीमांसक यह भी तो कह सकते हैं कि स्वत: प्रामाण्यरूपसे प्रमाणपनेका व्यवहार प्रसिद्ध है यदि नैयायिक यह दोष दे कि स्वत: प्रमाण प्रमेय व्यवहारकी प्रसिद्धि होनेपर स्वत: प्रामाण्यका कथन करना सत्य बनेगा और स्वत: प्रामाण्यका कथन सत्य बनने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर स्वतः प्रामाण्यकी बात प्रमाण प्रमेय व्यवहारकी प्रसिद्धि बने तो, इस तरह इतरेतराश्रय दोष आ जायगा। तो शून्यवादी कहता है कि ऐसा दोष तो नैयायिकके यहाँ भी समान है उनसे भी यह कहा जा सकता है कि स्वतः ही प्रमाण प्रमेय व्यवहार प्रसिद्ध होनेपर स्वतः प्रामाण्यका अनुवाद करना सत्य होगा और स्वतः प्रामाण्यके अनुवादकी सत्यता होनेसे स्वतः प्रमाण प्रमेय व्यवहारकी प्रसिद्धि होगी। ऐसा इतरेतराश्रय दोष नैयायिकके सिद्धान्तमें भी घटित हो जाता है। तो इस तरह स्वतः प्रामाण्य वाला प्रथम विकल्प तो सिद्ध न बना। यदि कहो कि परतः प्रामाण्यके प्रकार से अन्य लोकव्यवहारसे प्रकृत लोकव्यवहारकी प्रसिद्धि बन जायगी तो उत्तरमें कहते हैं शून्यवादी कि फिर तो अनवस्था दोष यहाँ अवश्य ही आ जायगा। इस तरह प्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे ज्ञानमें प्रामाण्यके कथनका निश्चय करना युक्त नहीं है। यों प्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे प्रमाणमें प्रमाणता व्यवस्थित नहीं बनती है। यों नैयायिक सिद्धान्तमें जो माना गया था कि प्रमाणमें प्रमाणता प्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे बनेगी, युक्त न हुआ।

बौद्धाभिमत अविसंवादित्वसे प्रमाणमें प्रामाण्य माननेके चतुर्थ विकल्पका शून्यवादी द्वारा निराकरण—पूर्वोक्त तीनों विकल्पोंके निराकरणकी तरह सौगत सिद्धान्तमें माने गए अविसम्वादत्वसे प्रमाणमें प्रमाणता आ जायगी, यह भी बात युक्तिसंगत नहीं बनती; क्योंकि ज्ञानकी अविसम्वादकता यह है अर्थ क्रियाके सद्भावरूप। तो पदार्थमें अर्थ क्रिया हो रही है उसके अनुकूल काम हो रहा है तो वहाँ विसम्वद न रहा? यह बात प्रसिद्ध होती है। तो अर्थ क्रियाके सद्भावरूप ज्ञानका अविसम्वाद बिना जाने हुए तो प्रमाणकी व्यवस्थाका कारण नहीं बन सकता। याने यहाँ दो विकल्प किये जाते हैं कि वह अविसम्वाद क्या जाने हुए प्रमाणकी व्यवस्थाका करने वाला होता है या न जाने हुए प्रमाणकी व्यवस्थाका करने वाला होता है? उसमेंसे न जाना हुआ अविसम्वाद तो प्रामाण्यकी व्यवस्थाका कारण नहीं बन सकता, क्योंकि इसमें अतिप्रसंग दोष होगा। फिर तो बिना जाने जिस चाहेकी व्यवस्था कर ली जायगी। इसी तरह जाने हुए भी अविसम्वादसे प्रामाण्यकी व्यवस्थाका कारण मानोगे तो यह बताओ कि अविसम्वादका जानना इसमें जो प्रमाणता आई वह किससे आई? यदि अन्य प्रमाणसे आई तो वह ज्ञान भी अन्य ज्ञानसे प्रमाणरूप बना। तो इस तरह अनवस्था दोष आयगा। यदि कहो कि अर्थक्रिया स्थितिरूप अविसम्वाद ज्ञान का प्रमाण अभ्यासदशामें स्वतः सिद्ध होता है, इस कारण दोष नहीं है। तो शून्यवादी बौद्धोंसे पूछ रहे हैं कि इस अभ्यासका अर्थ क्या है? क्या बारबार ज्ञानमें सम्वादका अनुभवन करना यह अर्थ है? तो यहाँ अर्थ सत्यरूप सामान्यमें होता है या विशेषरूपमें होता है? याने ज्ञानमें बारबार सम्वादका अनुभव सामान्यमें होता है या विशेषमें?

अतज्जातीय ज्ञानमें संवादकताकी असिद्धि—यदि कहो कि अतज्जातीय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानमें बारबार सम्वादका अनुभव होता है तो यह सम्भव हो नहीं सकता क्षणिकवाद मे. क्योंकि ज्ञाता क्षणिक है, नष्ट हो जाता है क्षणभरमें, तो वह बारबार ज्ञान कैसे करेगा. यदि कहो कि संतानकी अपेक्षासे बारबार ज्ञान करना सम्भव हो जायगा। तो भाई संतानको तो बौद्धोंने अवस्तु माना, तो उसकी अपेक्षा बन ही नहीं सकती। और यदि संतान वस्तुरूप हो जाय तो वह भी क्षणिक बन गया। फिर संतानकी अपेक्षासे वह अभ्यास क्या हो सकता है ? अतः बारबार ज्ञानमें सम्वादका अनुभवन करना क्षणिकवादियोंके बन ही नहीं सकता। यदि संतानको अक्षणिक अर्थात् नित्य मानते हो तब यह सिद्धान्त कि जो सत् है वह सब क्षणिक है, इसका विघात हो जायगा। क्योंकि संतान नाम तो है अनेक समयोंमें उसकी परम्परा रहनेका। तो तब अनेक समयोंमें कुछ रहा तो क्षणिक कैसे रह सकेगा तो इस तरह अतज्जातीय ज्ञानमें बराबर सम्वादका अनुभव होना सम्भव नहीं है।

तज्जातीय ज्ञानमें भी संवादकताकी सिद्धिका अभाव बताते हुए शून्यवादी द्वारा तत्त्वोपप्लववादके समर्थनका उपसंहार—अब यदि कहो कि तज्जातीय ज्ञानमें बारबार सम्वादका अर्थात् सत्यरूपताका अनुभव हो जायगा सो यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि जो जातिका निराकरण करने वाले हैं उन लोगोंके यहाँ किसी भी ज्ञानमें तज्जातीयता नहीं बन सकती है। बौद्ध जन जातिको नहीं मानते क्योंकि जातिका सम्बन्ध है सामान्यके साथ, और सामान्यतत्त्व माननेपर फिर अनेक बातोंको व्यापक व नित्य मानना पड़ेगा इस कारण जाति निराकरणवादमें तज्जातीयताकी बात ही नहीं बनती। यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि अन्यापोह रूप जातिके द्वारा किसी ज्ञानमें तज्जातीयता बन ही जायगी। तो उत्तरमें कहते हैं कि यह बात यों युक्त नहीं है कि अन्यापोह तो अवस्तुरूप है। केवल काल्पनिक है, सद्भूत नहीं। यदि अन्यापोहको वस्तुरूप मान लोगे तो जातिपनेका विरोध हो जायगा, क्योंकि स्वलक्षण जो विशेष है उसे ही सौगत सिद्धान्तमें वस्तुरूपसे माना गया है। और अन्यापोहको मान रहे हो वहाँ जाति तो यदि जाति है तो वस्तुरूप नहीं, वस्तुरूप है तो जाति नहीं है इस प्रकार सामान्यसे प्रमाणका लक्षण नहीं बनता है और विशेषसे भी प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण नहीं बनते हैं। अतः विचार करनेपर प्रमाणतत्त्वकी सिद्धि नहीं होती है। और जब प्रमाणतत्त्वकी सिद्धि न बन सकेगी तो प्रमेय तत्त्वकी व्यवस्था कहाँसे सम्भव है ? तो यों न प्रमाणतत्त्व रहा न प्रमेयतत्त्व रहा। सो अब तत्त्वोपप्लवकी व्यवस्था युक्तिसंगत हो गयी। इस प्रकार शून्यवादी तत्त्वका अभाव सिद्ध कर रहे हैं।

शून्यवादीके शून्यवादका निराकरण— अब उक्त तत्त्वोपप्लवके सिद्धान्तके सम्बन्धमें समाधान रूपसे जैन शासनकी ओरसे कहा जा रहा है कि शून्यवादका वह सब कथन असार है क्योंकि विचार किये जानेपर तत्त्वोपप्लवकी व्यवस्था नहीं बनती है, क्योंकि अबाधित तत्त्वकी सिद्धिका निराकरण सम्भव नहीं है। इस समय शून्य-

http://sahjanandvarnishastra.org/

वादी कह रहे हैं कि तत्त्वोपप्लवके सम्बन्धमें विचार करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि यह शून्यवादका सिद्धान्त सर्वथा विचार करने योग्य नहीं है। क्योंकि वह तो बाधित ही है, अभावरूप है, इस कारण वह विचारसह है, अर्थात् उसपर विचार नहीं चल सकता। और यदि शून्यवादके सम्बन्धमें विचार चल सकता है, विचारसह है ऐसा मानते हो तब अनुपप्लुत–अबाधित तत्त्वकी सिद्धि हो गई, तत्त्वोपप्लव रहा हो नहीं तो फिर आप खण्डन किसका करेंगे? शून्यवादकी सिद्धि तो इस प्रकार को जाती है कि तत्त्ववादी प्रमाणतत्त्व ो और प्रमेयतत्त्वको मानते हैं, वह विचार करने पर अक्षम हैं अर्थात् तत्त्ववादियोंके द्वारा माने गए तत्त्वपर विचार करते हैं तो वे सिद्ध नहीं होते, इसी बुनियादपर तत्त्वोपप्लवकी सिद्धि है। समाधानमें कहते हैं कि शून्यवादीका यह कथन भी व्यर्थ है क्योंकि तत्त्वके अनुरूप विचार करनेपर वह विचार निराकृत हो जाता है। प्रमाणकी प्रमाणता न तो इसके निर्दोष कारण समूहसे उत्पन्न होनेके कारण माना है और न बाधारहित ज्ञानमें प्रमाणता मानी है और न प्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे अथवा अविसम्वादकता आदिकके कारण सम्वेदनमें प्रमाणता मानी है। स्याद्वादी जन इन चार कारणोंसे प्रमाणमें प्रामाण्य नहीं मानते क्योंकि इसमें जो अभी शून्यवादीने दोष दिया है वह ही दोष आता है, फिर ज्ञानमें प्रामाण्य किस प्रकार होता है? तो उत्तरमें कहते हैं कि बाधकोंकी असम्भवता सुनिश्चित् होनेसे अर्थात् उसमें बाधक कारण जब कुछ सम्भव नहीं है तो प्रमाणकी प्रमाणता सिद्ध होती है।

ज्ञानमें बाधकासम्भवत्वकी दुखबोधताका परिहार—कोई यह सोचे कि स्व और अर्थका व्यवसाय करने वाले ज्ञानमें बाधकोंकी असम्भवता दुरवबोध है सो बात नहीं है किन्तु बाधक प्रमाण है, इस बातका निश्चय करना बहुत आसान है। समस्त देश काल और पुरुषोंकी अपेक्षासे भले प्रकार बाधकोंका असम्भव होना सुनिश्चित् है, वह अभ्यस्त विषयमें स्वतः ही जान लिया जाता है अर्थात् प्रमाणकी प्रमाणता अभ्यस्त विषयमें स्वतः ज्ञात होती है स्वरूपकी तरह। जैसे जो ज्ञान उत्पन्न हुआ उस ज्ञानका स्वरूप तो स्वतः ही जान लिया जाता है। ज्ञानने क्या जाना? ज्ञानका क्या स्वरूप है? ज्ञानका क्या विषय है? इसको समझनेके लिए किसी भी ज्ञान करने वाले पुरुषको हैरानी नहीं होती। क्योंकि ज्ञानका स्वरूप स्वतः ही निश्चित हो जाता है। इस प्रकार अभ्यस्त विषयमें प्रमाणकी प्रमाणता स्वतः ही व्यवस्थित हो जाती है। परन्तु अनभ्यस्त विषयमें यह प्रमाणता परतः होती है, इस कारण इस प्रसंगमें न तो अनवस्था दोष आता है और न इतरेतराश्रय दोष आता है। बाधकोंकी असम्भवता सुनिश्चित् होनेका अर्थ यह है कि वह ज्ञान स्व और अर्थका निश्चायक हो रहा है सो अपना और अर्थका निश्चायक होना अर्थात् बाधकोंकी असम्भवता होना यह अभ्यासदशामें परप्रमाणसे सिद्ध नहीं किया जा सकता, जिससे कि अनवस्था दोष हो और अभ्यास दशामें स्वतः प्रामाण्य माननेपर इतरेतराश्रय दोष भी नहीं आता,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्योंकि प्रमाणमें प्रामाण्य स्वत: ही सिद्ध होता है तथा अनभ्यासदशामें ऐसे अन्य प्रमाणोंसे प्रमाणता विदित होती है कि जिस अन्य प्रमाणकी प्रमाणता विदित होती है, जिस अन्य प्रमाणकी प्रमाणता स्वयं सिद्ध है अर्थात् स्वयं सिद्ध प्रामाण्य वाले अन्य प्रमाणसे अनभ्यस्त दशामें प्रामाण्यका परिज्ञान होता है और उससे फिर पूर्वज्ञानमें प्रामाण्य सिद्ध होनेसे अनवस्था आदिक दोषका अवकाश कहाँसे हो सकता है ? तो निष्कर्ष यह है कि अभ्यस्त दशामें प्रमाणमें प्रामाण्य स्वत: होता है और अनभ्यस्त दशामें प्रमाणमें प्रामाण्य परत: निश्चित किया जाता है। और ऐसा माननेमें न अनवस्था दोष आता है और न इतरेतराश्रय दोष आता है।

प्रतिपत्ताका अभ्यास और अनभ्यास होनेका सयुक्तिक वर्णन—प्रतिपत्ताका कहीं अभ्यास होना और कहीं अभ्यास न होना सयुक्तिक है याने किसी ज्ञानमें बारबार सत्यताका अनुभवन होना यह तो हुआ अभ्यास और किसी ज्ञानमें सत्यताका अनुभव न होना यह है अनभ्यास। सो किसी विषयमें अभ्यासका होना और अनभ्यास का होना इष्ट और अदृष्ट नामकी विचित्रतासे सम्भव ही है। अदृष्ट मायने हुआ ज्ञानावरणका क्षयोपशम उसकी स्थितिके अनुसार अभ्यास और अनभ्यास दोनों बनते हैं। बाहरमें दृष्ट कारण माने गये हैं देश, काल, विशेष आदिक तो उनकी वजहसे अभ्यास बराबर प्रतीत होता हुआ देखा गया है क्योंकि आवरणके क्षयोपशमके अनुसार आत्मा को एक बार या बारबार अपने अर्थके सम्वेदनमें अभ्यासकी उपपत्ति देखी गई है। और, अपने अर्थके निर्णयज्ञानके आवरणका उदय होनेपर अर्थात् पदार्थ ज्ञानावरणका उदय होनेपर जिस पदार्थके ज्ञानका आवरणके होनेपर अथवा अर्थका परिज्ञान न होने पर या एक सम्वेदन होनेपर या बारबार सम्वेदन होनेपर अनभ्यास घटित होता ही है, क्योंकि पूर्व और उत्तर पर्यायके स्वभावका त्याग और स्वभावका उपादान अर्थात् अपने भवनका उत्पाद उससे युक्त स्वभाव और स्थितिरूप होनेसे आत्मा परिणामी है और उसमें अभ्यास और अनभ्यासका विरोध नहीं है। जो सर्वथा क्षणिक है अथवा नित्य है, ऐसा प्रतिपत्ता माना जाय तो अभ्यास और अनभ्यासकी बात नहीं बनती। लेकिन जो आत्मा उत्पादव्यय ध्रौव्य संयुक्त है वहाँ पूर्व अनभ्यासदशाका त्याग, अभ्यास दशाकी उत्पत्ति, अनिर्णय अवस्थाका त्याग, निर्णय अवस्थाकी उत्पत्ति और इन सबके होते हुए ध्रौव्यका होना यह सब उसमें सम्भव है।

सम्यक प्रमाणमें बाधकप्रमाणकी असंभवताके समर्थनमें प्रश्नोत्तर—अब यहाँ शून्यवादी कह रहे हैं कि बाधक प्रमाणकी असम्भवता सुनिश्चित है किसी ज्ञानमें, इस बातको कोई असर्वज्ञ पुरुष कैसे जाननेमें समर्थ हो सकता है ? ऐसा कहने वालेके प्रति उत्तर दिया जाता है कि फिर तुम ही यह बतलावो कि सब जगह सब समय सब जीवोंके सर्वज्ञान बाधाओंकी असम्भवतासे अनिश्चित है अर्थात् उनमें बाधक ज्ञान पाये जा सकते हैं। यह भी कोई असर्वज्ञ अल्पज्ञ पुरुष कैसे जान सकता है जैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शंकाकारका यह कहना था कि समस्त ज्ञानोंमें बाधकपना असम्भव है ऐसा निर्णय असर्वज्ञ नहीं कर सकता तो उनके प्रति यह भी क्या नहीं कहा जा सकता कि समस्त ज्ञानोंमें बाधकपना सम्भव है यह भी अल्पज्ञ पुरुष कैसे जान सकते हैं ? तब शून्यवादी कहता है कि ठीक है, इसी लिए तो संशय बन जायगा। याने बाधक प्रमाण सम्भव भी हो और सम्भव न भी हो, इन दोनोंके विषयमें संशयतो बन गया। तो उत्तरमें कहते हैं कि वह भी बाधकोंकी असम्भवता और सम्भवताका विषय करने वाला संशय ज्ञान सर्वदा, सबमें, सर्वज्ञ हो सकता है इसे भी अल्पज्ञ शून्यवादी कैसे समझ सकता है? यदि कहो कि स्वसम्वेदनमें बाधक प्रमाणका असम्भव होना सुनिश्चित है अथवा अनिश्चित है, इस प्रकारके सन्देहरूप ज्ञानसे यह जान लिया जायगा कि सभी ज्ञानोंमें उस प्रकारका अवबोध पाया जाता है। याने जो ज्ञान अपने आपमें कुछ परख रहा है ज्ञान के निजस्वरूपमें कि यह ज्ञान सही है अथवा नहीं है तब हम अपने ज्ञानके बारेमें कोई सन्देह पाते हैं तो उस प्रक्रियासे हम यह निर्णय कर लेंगे कि सब जगह सब समय सभी के ज्ञानोंमें इस प्रकारका संशय पाया जाता है। इसपर उत्तर देते हैं कि तब तो इसका एक अनुमान बन बैठेगा, किस प्रकार, सो देखिये ! विवादापन्न ज्ञान बाधक प्रमाणकी असम्भवताका निश्चय होना अथवा न होना याने बाधक प्रमाण है या नहीं इन दो बातोंसे सन्दिग्ध है ज्ञान होनेसे स्वसम्वेदन ज्ञानकी तरह। अर्थात् अपने ज्ञानकी तरह। सो वह स्वसम्वेदन साधन यदि बाधकोंकी असम्भवतासे सुनिश्चित है तब तो इस ही हेतुसे साधनमें दोष आयगा कि देखो अब संशय तो न रहा। जैसे अनुमान बनाया कि ज्ञान संदिग्ध हुआ करता है ज्ञान होनेसे हमारे ज्ञानकी तरह तो इस अनुमानमें जो साधन दिया गया उसमें बाधक प्रमाण तो नहीं है या है ? यदि कहो कि बाधक प्रमाण नहीं है यह बात बिल्कुल सुनिश्चित है तो लो यह ही ज्ञान सन्देह रहित बन गया फिर यह जो सिद्ध किया जा रहा है कि ज्ञान सारे संदिग्ध होते हैं ज्ञानपना होने से, हम लोगोंके ज्ञानकी तरह। तो अब इसकी सिद्धि कैसे होगी ? हेतु तो व्यभिचारी हो गया। यदि कहो कि इस अनुमानके साधनमें बाधकोंकी असम्भवता सुनिश्चित् नहीं है तो लो अब तुम्हारा अनुमानसाधन ही पक्का न रहा, बाधकका असम्भवपना निश्चित न रहा तो अब ऐसा असिद्ध संदिग्ध हेतु अपने साध्यकी सिद्धि कैसे कर सकता ? यदि यों साध्यकी सिद्धि करने लगे तो इसमें अतिप्रसङ्ग दोष होगा।

समस्त ज्ञानोंमें शून्यवादी द्वारा की गई संदिग्धता सिद्धिका निराकरण

और भी बताइये कि प्रतिपत्ताका वह ज्ञान कोई कहीं कभी बाधकोंकी असम्भवतासे सुनिश्चित और कोई कहीं कभी बाधकोंकी असम्भवतासे अनिश्चित ये दोनों ही प्रकार के ज्ञान प्रसिद्ध हैं या नहीं ? अर्थात् प्रमाणसे सिद्ध हैं या नहीं ? यदि सिद्ध नहीं हैं, अप्रसिद्ध हैं तो फिर उनमें सन्देह कैसे बन सकता है ? किसी वस्तुमें दोनों विशेष असिद्ध हों तो उसके सामान्यके देखनेसे ही उसको जानने वाले ज्ञानमें सन्देहकी असम्भवता है। जैसे ठूठ और पुरुष ये दो हुए विशेष, यदि इन दो विशेषोंकी अप्रसिद्धि है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

याने ठूठ ही कोई चीज नहीं पुरुष भी कोई चीज नहीं ऐसी यदि अप्रसिद्धता है तो उस वस्तुमें ऊँचापन आदिक सामान्य धर्म दिखनेसे ही उभय विषयक याने स्थाणुपुरुष विषयक ज्ञानमें सन्देह नहीं हो सकता। जैसे कि जमीनका कोई भाग उठनेसे जो एक थोड़ासा भवन जैसा रूप ले लिया उसके दिखनेपर ठूठ और पुरुषके विषयमें सन्देह तो नहीं होता क्योंकि वहाँ ठूठ और पुरुषकी प्रसिद्धि ही नहीं हो रही है। यदि कहो कि तब तो फिर वे दोनों विशेष प्रसिद्ध मान लिए जायेंगे, जिनके बारेमें सन्देह किया जाता है वे दोनों धर्म प्रसिद्ध मान लिए जायें तो यह बताओ कि उन विशेषोंको यदि प्रसिद्ध मान लेते हो तो वह स्वतः सिद्ध है या परतः सिद्ध है। यदि कहो कि अभ्यास दशामें तो स्वतः सिद्ध है और अनभ्यास दशामें परतः ही सिद्ध है तो इसमें अकलंक शासन सिद्ध हो गया क्योंकि समस्त ज्ञानोंमें कथंचित् स्वतः कथंचित् परतः प्रमाण और अप्रमाणकी व्यवस्था बनादी गई है। यही मतलब स्याद्वाद शासनका होता है। अन्यथा अर्थात् केवल स्वतः ही प्रामाण्य होता है या परतः ही प्रामाण्य होता है, ऐसा स्वीकार करनेपर फिर तो कहीं भी अवस्थान नहीं हो सकता है।

बाधकासंभवतासे प्रामाण्यकी उपपत्ति होनेके कारण शून्यवादी द्वारा विकल्पोंकी उपपत्तिके प्रयासकी व्यर्थता—जब प्रमाणकी प्रमाणता बाधकोंकी असम्भवताके निश्चय होनेसे बनती है, तब शून्यवादीने जो चार विकल्प करके प्रमाणकी प्रमाणताका भी खण्डन किया है उन विकल्पोंके परिणमनकी उत्पत्ति ही नहीं होती। उन विकल्पोंमेंसे प्रथम दो विकल्प तो मीमांसकके लक्ष्यसे किये गये थे, निर्दोष कारकसे उत्पाद्य होनसे प्रमाणमें क्या प्रमाणता आती है और दूसरा विकल्प था कि बाधकानुत्पत्तिसे क्या प्रमाणमें प्रमाणता आती है ? तीसरा विकल्प था नैयायिकके लक्ष्यसे कि क्या प्रवृत्तिकी सामर्थ्यसे प्रमाणमें प्रमाणता आती है ? और चौथा विकल्प था क्षणिकवादियोंके लक्ष्यसे कि क्या अविसम्वाद होनेसे प्रमाणमें प्रमाणता आती है ? तो जब प्रमाणकी प्रमाणता बाधकोंके असम्भवपनेके निश्चयसे बनती है तो इस विकल्प समूहका कारण बना बनाकर प्रश्न खड़ा करना यह युक्त नहीं होता। स्वयं अन्य जगह अन्य समय किसी प्रकार नहीं जाना है वस्तुविशेषको जिसने ऐसे शून्यवादीके फिर कभी वस्तु ज्ञानमें संशयका योग नहीं बन सकता। यदि कहो कि कभी कहीं निर्दोष कारकोंके द्वारा उत्पाद्यत्व आदिक विशेषोंकी प्रतिपत्ति हो जायगी ? तो फिर शून्यवादकी सिद्धि कैसे हो सकती है ?

पराभ्युपगमसे विकल्पोंकी उपपत्ति माननेपर तत्त्वोपप्लवकी सिद्धिका अभाव—यदि शून्यवादी यह कहे कि दूसरोंने उस तरहसे माना है, इस कारण उन विशेषोंकी प्रतिपत्ति होनेसे दोष नहीं है। तो उत्तरमें पूछते हैं कि तो फिर क्या दूसरोंका वह मानना प्रमाणसे प्रतिपन्न है या प्रमाणसे असिद्ध है ? यदि वह दूसरोंका मंतव्य प्रमाणसे सिद्ध है तो शून्यवादीके द्वारा स्वयं फिर कैसे प्रमाण प्रमेय तत्त्वका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपप्लव किया जा सकता है क्योंकि वह दूसरेका माना गया तत्त्व प्रमाणसे सिद्ध मान लिया गया। यदि कहो कि दूसरोंके द्वारा माना गया वह तत्त्व है, सो अन्य दूसरोंके अभ्युपगमसे (मान लिये जानेसे) जान लिया जाता है तो ऐसा माननेपर फिर उस अन्यका अभ्युपगम किसी अन्यके अभ्युपगमसे माना जायगा। इस तरह उन विकल्प विशेषोंकी प्रतिपत्तिमें अनवस्था दोष आता है। अब यहाँ आश्चर्यकी बात देखिये कि यह शून्यवादी दूसरोंके माने गए मंतव्यका स्वयं विश्वास करते हुए फिर यह कह रहे कि मैं इसपर विश्वास नहीं करता हूँ, कैसे उसे स्वस्थ कहा जायगा? यह तो उन्मत्त की तरह वचन है। और; यदि दूसरेके माने गए विचारको स्वयं नहीं जानता यह शून्यवादी तो फिर उस परके अभ्युपगमसे कुछ भी यह नहीं जान सकता, वस्तुमात्रको भी नहीं समझ सकता। सो यह थोड़ा भी स्वयं निर्णीतका आश्रय न करता हुआ किसी विचारमें कुछ व्यापार करता है, ऐसा हम नहीं समझते, क्योंकि कुछ भी निर्णीत विषयका आश्रय करके ही अनिर्णीत अर्थके विचारकी प्रवृत्ति होती है। यदि सभी जगह विवाद जान लिया जाय तो फिर किसी भी स्थलका उस विचारका अवतरण नहीं हो सकता, इसलिए यह बात सही है कि कुछ तो निर्णीतका आश्रय होना ही चाहिए फिर उसके सम्बन्धमें और अधिक विचार चल सकता है लेकिन मूलसे ही सबके विषयमें विवाद मानते हैं तो फिर कहीं भी विचारकी प्रवृत्ति नहीं बन सकती। तो इन सब उक्त युक्तियोंसे यह सिद्ध हो गया कि तत्त्वशून्यवादी भी स्वयं एक प्रमाण से चाहे वह अपने यहाँ प्रसिद्ध हो चाहे परके यहाँ प्रसिद्ध हो किसी प्रमाणसे विचार करनेके बाद भी प्रमाण तत्त्व और प्रमेय तत्त्वका उपप्लव कर रहे हैं तो ये अपनेको ही ठग रहे हैं। जब किसी प्रमाणसे मानते हैं शून्य तत्त्वको तो प्रमाण तत्त्व तो आ ही गया और जहाँ प्रमाणतत्त्व आया वहाँ प्रमेय तत्त्व भी आ जाता है, तो इस तरह शून्यवादका सिद्धान्त घटित नहीं होता।

तीर्थ चलाने वाले या तीर्थच्छेद करने वाले सम्प्रदायोंमें सबके आप्तत्वका अभाव—प्रमाणतत्त्व व प्रमेय तत्त्व हैं और तत्त्वोंके विषयोंमें प्रत्येक सम्प्रदाय के दार्शनिक अपना मंतव्य रखा करते हैं। अब उस सम्बन्धमें उनका परस्पर विरोध है और परस्पर विरोध होनेके कारण वहां सभीकी आप्तता नहीं बन सकती है। अतः जो यह कारिका चल रही है कि तीर्थंकरोंकी सम्प्रदायोंमें परस्पर विरोध है अतएव उन सबके आप्तता नहीं है, उन सबमेंसे कोई ही आप्त हो सकेगा, सबकी आप्तता नहीं बनती। इस वक्तव्यपर मीमांसकोंने हर्ष जाहिर किया था कि ठीक ही कह रहे हैं आप, कारिकाका यही अर्थ है कि जिन-जिनने तीर्थ चलाया वे सब परस्पर विरुद्ध वचन बोलनेके कारण आप्त नहीं है, प्रमाण नहीं है और तभी तो श्रुतिवाक्य अपौरुषेय होनेसे प्रमाण है। सो इस बातका भी निराकरण यही है कि श्रुतिवाक्योंमें भी परस्पर विरुद्ध वचनार्थ होनेके कारण प्रमाणभूतता नहीं है और यह बात इस कारिका से भी बनती है। तीर्थकृत्का अर्थ तीर्थको करने वाला यह भी है और तीर्थको छेदने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वाला भी है। जो तीर्थका विनाश करते हैं उनके सम्प्रदायोंमें परस्पर विरोध होनेके कारण सबके आप्तता नहीं बनती। तीर्थका छेद करने वाले सम्प्रदायोंके तथा सब कुछ अपने माने हुएको ही पुष्ट करने वालोंके आप्तता नहीं है, क्योंकि उनका कथन परस्पर विरुद्ध है। कोई एक प्रमाणवादी है, कोई दो-तीन आदिक प्रमाण मानने वाले हैं, वे अपने उस प्रमाणको, प्रमाणके विषयको सिद्ध नहीं कर सकते। एक प्रमाणवादी तो ज्ञान द्वैतका अवलम्बन करने वाले चित्राद्वैतका आश्रय करने वाले तथा परमब्रह्म अद्वैतका व शब्दाद्वैतको भाषण करने वाले सुगत आदिक तीर्थछेदके सम्प्रदाय हैं उसी प्रकार एकमात्र प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानने वाले चार्वाक भी तीर्थछेदके सम्प्रदाय वाले हैं। सर्वज्ञ सामान्यमें विवाद करने वाले मीमांसक चार्वाक और शून्यवादी इनके प्रति आत्मत्वका सर्वज्ञसामान्यका सद्भाव सिद्ध करके अब उस सर्वज्ञ विशेषमें विवाद करने वाले सौगत आदिकके प्रति कथन किया जायगा, उसकी भूमिकामें कहा जा रहा है कि इन दार्शनिकोंमेंसे मीमांसक चार्वाक शून्यवादी ये तो सर्वज्ञ मानते ही नहीं। कोई भी पुरुष सर्वज्ञ हो नहीं सकता, क्योंकि मीमांसकोंने श्रुतिवाक्यको प्रमाण माना है, चार्वाकने केवल प्रत्यक्ष ज्ञानको ही प्रमाण माना है और शून्यवादियोंने प्रमाण तत्त्व माना है और न प्रमेय तत्व माना है। तो ये दार्शनिक तो सर्वज्ञका अभाव ही मानते है। पर कुछ हो ऐसे सम्प्रदाय हैं जो सर्वज्ञका सद्भाव तो मानते हैं किन्तु विशेषके सम्बन्धमें उनके भी विवाद है। अतः परस्पर विरुद्धवचन होनेसे उन सबके आप्तता नहीं है। देखिये ! कोई कहता है सुगत सर्वज्ञ है, कोई कहता है कि कपिल सर्वज्ञ है आदिक विशेषोंकी सर्वज्ञतामें विवाद कर रहे हैं। तो जो सर्वज्ञ विशेषके सम्बन्धमें विवाद करें और सर्वज्ञ सामान्यके सद्भावमें विवाद करें, दोनों ही विचार वालोंका इस कारिक के अर्थसे निराकरण हो जाता है।

मूलतत्त्वके विरुद्ध अनेक प्रमाणवादियोंमें परस्पर विरोध होनेसे उन सबके आप्तताकी असिद्धि–देखिये ! मूल अन्तस्तत्त्वके विरुद्ध अनेकों प्रमाण मानने वाले अनेक प्रमाणवादी तीर्थ छेदके सम्प्रदाय हैं यद्यपि ये प्रमाण मानते हैं और अनेक प्रमाण मानते हैं तो भी वस्तुका जो मूल स्वरूप है उसपर दृष्टि न होनेसे तथा श्रुति वाक्योंसे उनके कुछ ही अर्थ लगाकर हिंसा आदिक कर्मोंमें प्रयुक्त होने वाले तीर्थका ही तो खण्डन कर रहे हैं ऐसे तीर्थ छेद सम्प्रदाय जैसे अनेक हैं उसी प्रकार तत्त्वपल्लववादी अर्थात् शून्यवादी भी तीर्थ छेदके सम्प्रदाय हैं क्योंकि इन शून्यवादियोंने तो उसका भी प्रमाण नहीं कहा है, तो वे भी अनेक प्रमाणवादी हैं और शून्यवादी भी अनेक प्रमाणवादी हैं। अनेक प्रमाणका यह भी अर्थ है कि एक नहीं किन्तु २-३-४ आदिक अनेक प्रमाणोंको माननेवाले, और अनेक प्रमाणवादका यह भीअर्थ है कि एक प्रमाणको न माननेवाले। तो एक भी प्रमाणको नहीं मानते है शून्यवादी, इस कारण तो शून्यवादी भी अनेक प्रमाणवादी कहलाये और एकसे अधिक प्रमाणको जो माननेवाले हैं वे भी अनेक प्रमाण वादी हैं, सो ये सब तीर्थच्छेदके सम्प्रदाय हैं तथा आप्त आगम पदार्थ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समूहको अवगत ही चाहने वाले अनेक प्रमाणवादी वैनयिक हैं। उन्हें कुछ सोचने जाननेकी भी जरूरत नहीं है, किन्तु उनका सिद्धान्त है कि हमने तो सब कुछ जान लिया जो कोई भी है वही देव है, प्रत्येक सम्प्रदायके माने गए प्रभु हमारे देव हैं तब जो पहिले से यह निर्णय कर चुका तो उसने माना, उसने अपने प्रयोजनके प्रसंगमें सब कुछ जान लिया, उससे अधिक उसे जाननेकी इच्छा ही नहीं बनती। तो ऐसे वैयिक लोग भी तीर्थछेद सम्प्रदायके माने गए हैं, उन समस्त पुरुषोंमें आप्तपना नहीं है, क्योंकि परस्पर विरुद्ध अर्थका उन्होंने कथन किया है।

आप्तकी मीमांसाके प्रकरणका योग—यहाँ आप्तकी मीमांसामें कि कौन आप्त हो सकता है कौन नहीं हो सकता? इसकी व्याख्यामें बताया गया कि कहीं किसी के निकट देवता आते हों या उनका आकाशमें गमन होता हो या छत्र आदिक विभूतियाँ हों तो इनसे भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मायावियोंमें भी ये बातें सम्भव हैं। और, इसी प्रकार जिन केदेहका अन्तरङ्ग अतिशय है, मल, मूत्र, पसीना आदिक नहीं है और पुष्पवृष्टि आदिक अन्तरङ्ग अतिशय होते हैं उनके भी आप्तपना नहीं है इस कारणसे, क्योंकि इस तरहका देह तो रागादिमान देवोंके भी पाया जाता है। तब आप्त सिद्ध करनेके लिए एक ही उपाय रह जाता है कि जिसने जो तीर्थ चलाया, जिस तीर्थ परम्परामें वह है उसके द्वारा जो तीर्थ धर्म दर्शनके सम्बन्धमें वचन होते हैं उन वचनोंमें परस्पर विरोध न आये। कभी कुछ कहदे कभी कुछ कहदे तो विरोध न आने से ही तो उसकी सर्वज्ञताका विशेष जानने वाला है इस तरहका बोध हो सकता है, और जिसके वचनमें परस्पर विरोध है, पूर्वापरविरोध है उनके भी आप्तता नहीं है, और जब सभी अपना—अपना मंतव्य जाहिर कर रहें हैं तो उनमें परस्पर विरोध है इस कारण भी उन सबमें आप्तता नहीं है। हाँ हो सकता कि कोई इन्हीमेंसे आप्त हो, क्यों कि आप्त धर्म प्रवृत्तिके मूल स्रोत माने गए है। इससे ही धर्म प्रवृत्ति चलती है तो आप्त इसमें अवश्य है और कौन आप्त हो सकता है यह बात उनके वचनोंकी परीक्षासे सिद्ध होती है।

अद्वैतवादकी असिद्धि और अद्वैतवादोंमें परस्पर विरोध—जो ज्ञानाद्वैत का अनुसरण करते हैं, केवल ज्ञानमात्र ही तत्त्व है, इस प्रकारका मंतव्य रखते हैं तो उनसे यह पूछा जाय कि तुम जो अपना पक्ष बताते हो उसका साधन है कि नहीं, और परपक्षका दूषण भी बनता है कि नहीं? यह सब मानना होगा। अपने पक्षका साधन किए बिना मंतव्य कैसे निश्चित कर सकेगा और पर पक्षके दूषण दिए बिना परसे हट कर कैसे अपना मंतव्य बना सकेगा? तो देख लो अब यहाँ दो बातें हो गयी ज्ञानमें कि वह अपने पक्षका साधक है और परपक्षका दूषक है। तो ज्ञानाद्वैतके विरुद्ध ये दो बातें यहाँ ही आ गई। तब अद्वैत सिद्ध नहीं होता किन्तु द्वैत ही सिद्ध होता है। यदि अद्वैतवादी अपने पक्षके साधन और परपक्षके दूषणकी बातको युक्त समझकर द्वैतका प्रसंग

http://www.jainkosh.org

न आ जाय उस प्रसंगका निराकरण करते हुए यदि कल्पनासे द्वैतको अंगीकार करें तब फिर निश्चयसे ज्ञानाद्वैतकी सिद्धि भी न बनेगी। उसे भी कल्पनासे ही सिद्ध माना जायगा यहाँ ज्ञानाद्वैतवादी समस्त एक ज्ञानमात्र तत्व है ऐसा कह रहे हैं। तो ऐसा सिद्ध करनेके लिए ये ४ बातें तो आनी ही पड़ेंगी कि अपने पक्षका साधन हो और पर पक्षका दूषण हो सो जैसे ही अपने पक्षका साधन और परपक्षका दूषण माना ऐसा प्रमाण अंगीकार करनेपर द्वैतकी सिद्धि तो बन जाती है और अद्वैतको कल्पनासे मान रहे हैं। तो इसपर यह अतिप्रसंग आता है कि परमार्थसे अद्वैतकी सिद्धि नहीं हुई यह तो उनके लिए अतिप्रसंग आया और यदि कल्पनासे ही सब कुछ मान लिया जाता तो जो असत् हैं उनको भी मान लिया जाय, अनभिमत तत्त्व भी मान लिया जाय यह प्रसंग आता है। तो इस प्रकार जब विज्ञानाद्वैतकी सिद्धि न हुई तो समझिये कि किसी भी अद्वैतकी सिद्धि नहीं है और ये अद्वैतवादी अपने मंतव्यमें इन अद्वैतोंको मान भी लें तो माननेपर न सब अद्वैतवादियोंका ज्ञान द्वैत चित्र द्वैत, ब्रह्म द्वैतका अवलम्बन करने वाले दार्शनिकोंका परस्पर विरुद्ध वचन होनेसे इनमें आप्तता नहीं हो सकती है।

एक प्रमाणवादी चार्वाकका विरुद्ध वचन जो लोग एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानते हैं उनके यहाँ भी उनके ही पक्षकी सिद्धि नहीं होती अथवा विरोध होता है क्योंकि प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है अन्य कोई प्रमाण नहीं है, इसकी व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी। प्रत्यक्ष ही प्रमाण है सत्यरूप होनेसे अन्य प्रमाण नहीं है, क्योंकि वह सत्यरूप नहीं है इस तरह कुछ भी तो कहना होगा और यह बन जाता है अनुमान का प्रयोग। इसमें सम्वाद होना या सम्वाद न होना यह स्वभाव लिङ्ग मानना ही पड़ेगा। तो जब उन हेतुओंसे उत्पन्न हुआ अनुमान बन गया तब फिर अनुमानका निराकरण कैसे कर सकते हैं? अब एक ही प्रत्यक्ष प्रमाण रहा यह बात तो न बनी। और, भी देखो कि दूसरेके चित्तका ज्ञान व्यापार आदिक कार्य हेतु देखकर किए जाते हैं, तो व्यापारादिक कार्यलिङ्गसे अनुमान उत्पन्न हो गा अब प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण तो न रहा। अनुमान भी प्रमाण है। और, भी देखिये! चार्वाक परलोकका निषेध करते है, तो परलोक आदिकका निषेध करनेमें कोई हेतु ही तो दिया जायगा। हेतु दिया जाता है अनुपलब्धि होनेसे। परलोक नहीं है अनुपलब्धि होनेसे तो अब इस साधनके द्वारा अनुमान ही तो बन गया। फिर प्रत्यक्ष एक ही प्रमाण है यह कथन तो विरुद्ध बन गया। तो यों चार्वाकका भी मंतव्य परस्पर विरुद्ध होनेसे प्रमाणभूत नहीं है। यदि चार्वाक यह कहे कि अनुमानको दूसरोंने माना है तो उन दूसरोंके माने जानेसे हम अनुमानको स्वीकार कर लेंगे तो इस तरह दूसरेके माने जानेके कारण स्वीकार करनेपर स्वयंके तो प्रमाण अप्रमाणकी व्यवस्था तो न रही। दूसरे सिद्धान्तने माना कि अनुमान है और उससे चार्वाकने अनुमान बनाया कि परलोक आदिक नहीं हैं तो उनकी ओरसे तो स्वयं प्रमाण व अप्रमाणकी व्यवस्था न रही। फिर प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है यह कथन उनका कैसे युक्त हो सकता है? यदि अनुमान प्रमाणका सद्भाव

http://sahjanandvarnishastra.org/

होनेपर भी चार्वाकको एक प्रमाणवादी माना जाय तो अन्य अनेक प्रमाणवादी लोग हैं, उन वैशेषिक आदिकको भी एक प्रमाणवादिताका प्रसंग होगा। अर्थात् जैसे चार्वाकोंके यहाँ अनुमान प्रमाण सिद्ध होनेपर भी वह अपनेको एक प्रमाण वाला ही माने तो जिसने २—३—४-५ आदिक प्रमाण माना है उन प्रमाणोंके होनेपर भी उन्हें भी एक प्रमाण वाला कह दिया जाय तो क्या हर्ज है ? चार्वाककी दृष्टिसे जब अनुमान प्रमाण होनेपर भी वे अपनेको एक प्रमाण वाला कहते हैं। तो इस तरह अनेक बातोंसे इन सब दार्शनिकोंमें परस्पर विरुद्ध वचनका उपयोग है, अतः उनकी प्रमाणता नहीं बनती।

अनेक प्रमाणवादियोंके प्रमाणोंकी सख्याकी विरुद्धता—और भी देखिये कि जो दार्शनिक अनेक प्रमाणवादी हैं जैसे कि सांख्य तीन प्रमाण मानते हैं, बौद्ध दो प्रमाण मानते हैं, नैयायिक चार प्रमाण मानते हैं और मीमांसक ६ प्रमाण मानते हैं तो इन लोगोंने प्रमाण अनेक माने, तो किन्तु तर्क नामका प्रमाण किसीने भी नहीं माना ? समस्त रूपसे साध्य साधन सम्बन्धका ज्ञान करना यह तो अनुमान ज्ञानके लिए आवश्यक ही है। जैसे कि कहा पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे तो इस अनुमानकी सिद्धिके लिए ज्ञान होना आवश्यक है कि जहाँ जहाँ धूम होती है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, विश्वमें सब जगहके लिए साध्य साधनकी व्याप्ति अर्थात् सम्बन्धका ज्ञान करना तो अनुमान ज्ञान करनेके लिये अति आवश्यक है। साध्य साधनके सम्बन्धमें ज्ञान किये बिना अनुमान प्रमाण बन ही नही सकता। तो तर्क नामका प्रमाण जरूर ही समझना चाहिए। अब उन्होंने प्रमाण अनेक मान लिया पर तर्क नामका प्रमाण तो छूट ही गया। तब उनकी संख्याकी व्यवस्था तो नहीं बन सकती बताओ फिर साध्य साधनका सामस्त्यरूपसे सम्बन्ध जाना जाय, जैसे कि अग्निसाधक धूम साधनकी प्रमाणताके लिये जितना कुछ भी धूम है वह सब अग्निसे उत्पन्न होता हुआ होता है या अअग्निसे उत्पन्न हुआ नहीं होता है, ऐसा ज्ञान तो करना ही पड़ेगा।

व्याप्तिज्ञानका अन्य ज्ञानोंमें अनन्तर्भाव व्याप्तिके ज्ञानके करनेमें प्रत्यक्षकी तो सामर्थ्य है नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण केवल सन्निहित विषयका ज्ञान कराता है। विश्वमें सर्वत्र जहाँ जहाँ ये साधन हैं वहाँ वहाँ साध्य अवश्य है। ऐसा परिज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान नही करा सकता। वह तो अभिमुख और नियमित विषयका ही बोध करायेगा। तो साध्य साधनकी व्याप्ति प्रत्यक्षसे नहीं जानी जा सकती। उसे अलगसे ही प्रमाण मानना होगा। इस प्रकार साध्य साधनकी व्याप्ति अनुमान प्रमाणसे भी नहीं जानी जा सकती। यदि साध्य साधनके सम्बन्धका ज्ञान अनुमान प्रमाणसे किया जायगा तो यह बतायें कि उस अनुमान प्रमाणसे भी जो साध्यसाधन होंगे उनकी व्याप्ति किस प्रमाणसे जानेंगे ? यदि कहा कि उसकी व्याप्तिके लिए अन्य प्रमाण हो जायगा तो तृतीय अनुमानमें साध्य साधनकी व्याप्ति पड़ी है। उसका ज्ञान किस तरह होगा ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस तरह अनेक अनुमान माने जानेपर भी कहीं समाप्ति न होगी और अनवस्था दोष आयगा। इस तरह वैशेषिक सिद्धान्तमें भी तर्क प्रमाण बनाना ही पड़ेगा अन्यथा उन के माने हुए ही प्रमाण सिद्ध न हो सकेंगे। इसी प्रकार सौगत जो दो प्रमाणोंको मानते हैं उनके यहाँ भी तर्क नामका अन्य प्रमाणका मानना अनिवार्य हो जायगा। क्षणिकवादियोंने केवल दो प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान, पर तर्क नामका प्रमाण न तो प्रत्यक्षमें गर्भित होता और न अनुमानमें गर्भित होता, इस कारण उनका भी तर्क नामका एक अन्य प्रमाण मानना ही होगा। इसी प्रकार सांख्य लोगोंने एक आगम प्रमाण और माना है लेकिन आगमका भी विषय साध्य साधनका सम्बन्ध जानना नहीं है। सर्वत्र विश्वमें साध्य साधनका सम्बन्ध परिज्ञात कर लेना अनुमानका काम नहीं है। तो यों कपिलको अथवा सांख्यको तर्क नामका प्रमाण मानना ही होगा, नैयायिकोंने एक उपमान प्रमाण और माना है लेकिन साध्यसाधनके सम्बन्धको जानने में उपमान प्रमाणमें असामर्थ्य है, उन्हें भी तर्क नामका प्रमाण अलगसे मानना ही पड़ेगा। मीमांसकोंने एक अर्थापत्ति नामका भी प्रमाण माना है लेकिन साध्य साधनके सम्बन्धका ज्ञान जैसे अनुमानसे नहीं किया जा सकता इसी प्रकार अर्थापत्तिसे भी साध्य साध की व्याप्तिका ज्ञान नहीं बनता। मीमांसकोंके सम्प्रदायमें ही भट्ट सम्प्रदाय ने एक अभाव नामका भी प्रमाण मान लिया, अभाव प्रमाणका भी अधिकार नहीं है कि वह साध्य साधनके सम्बन्धको जान सके। तो यों अनेक प्रमाणवादियोंने प्रमाण तो माने एकसे अधिक लेकिन तर्क नामका प्रमाण सबने छोड़ दिया।

शून्यवादी और वैनयिकोंके मन्तव्यकी विरुद्धता—अब शून्यवादियोंकी बात देखो! जो एक भी प्रमाण नहीं मानते उनके यहाँ भी विरुद्ध कथन है। वे सिद्ध करना चाहते हैं कि समस्त तत्त्वोंका उपप्लव है। लेकिन जिन तत्त्वोंका अभाव सिद्ध करना चाहते उसकी सिद्धिमें जो प्रमाण दिया जायगा वह प्रमाण तो उनका तत्त्व बना अथवा अनेक प्रमाणवादियोंके जो कि तत्त्व मानते हैं और शून्यवादी जो कुछ भी तत्त्व नहीं मानते उनका कथन तो परस्पर विरुद्ध हो ही गया। और फिर अनेक प्रमाणवादियोंके द्वारा माने गए तत्त्वोंका अभाव किसी प्रमाणसे सिद्ध ही तो किया जाता है। अनुमान प्रमाण तो उन्हें मानना ही पड़ेगा। तो उनका वह कथन विरुद्ध है। अब वैनयिक पुरुषोंकी स्थिति देखो! वैनयिक दार्शनिक वे कहलाते हैं जो सब कुछ जानना ही मानते हैं। जो बिना ही निर्णय किए सबको समान विनय करते हैं। समस्त तत्त्वोंको बिना ही निर्णयके माना जाता है तो वहाँ विशेष जाननेकी इच्छा ही क्यों बनेगी? उनके लिए तो जो सामान्यसे सब जाना गया है वही सब कुछ अवगत है। तो वैनियकोंके सर्व अवगत मानने वालेके भी जो परस्पर विरुद्ध वचनोंका समर्थन है ऐसा कथन करने वालेका विरुद्ध सम्वेदन प्रसिद्ध ही है। और, इस तरह भी विरुद्ध है कि यदि वे सुगतका मत मान लेते हैं तो कपिल आदिक मतका विरोध है। वैनयिक तो सभी मतोंको मानने वाले कहलाते हैं और जब उन सब मतोंमें कोई एक मत माने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो शेष मत विरोधमें रहा तो उसका मानना भी, जानना भी सब विरुद्ध रहा। तो यों वैनयिकोंके भी ज्ञानविरुद्ध और वचनविरुद्ध रहे। इस प्रकार यह हेतु बिल्कुल सिद्ध है कि परस्पर इन सब दार्शनिकोंमें विरोध है और इसी कारण तीर्थ चलाने वालेके जितने भी सम्प्रदाय हैं, सिद्धान्त हैं, उनके नेता हैं उन सबमें आप्तपनेका अभाव सिद्ध होता है।

अद्वैतवादमें स्वप्रमाणव्यावृत्ति होनेके कारण प्रमाण तत्त्वकी असिद्धि होनेसे आप्तत्वपात्रताका अभाव—अब यहाँ ज्ञानाद्वैतवादी स्याद्वादवादियोंके प्रति कह रहे हैं कि देखो स्याद्वादी पुरुषो ! जो तुमने हम लोगोंका परस्पर विरुद्ध कथन बताया है और अपने-अपने माने गए प्रमाण संख्याके नियमकी विरुद्धता कही है सो ये दोनों ही बातें हम लोगोंमें लागू नहीं होती। क्योंकि ज्ञानाद्वैतवादके स्वतः प्रमिति सिद्ध है। अपने ज्ञानसे अपनेसे प्रमिति होना यह प्रमाणका साध्य है और फल है तो जब स्वतः ही प्रमिति माना जाता तब इन अद्वैतवादियोंके यहाँ परस्पर विरुद्ध वचन न रहा। तो इन चार अद्वैतवादियोंके यहाँ अब अन्य प्रमाणसे स्वपक्षका साधन परपक्षका दूषणका वचन न होनेसे कोई परस्पर विरोधकी बात ही न रही। और जिसने एक ही इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष माना है उस एक प्रमाणवादीके यहाँ भी प्रत्यक्षकी प्रमाणता प्रत्यक्षसे ही सिद्ध है, क्योंकि प्रत्यक्षसे ही अनुमान आदिकका प्रामाण्य सिद्ध नहीं है, तब अन्य प्रमाणोंके प्रसंग आनेकी कहाँ नौबत आई ? इसी तरह अनेक प्रमाणवादियोंके यहाँ भी अपने-अपने द्वारा माने गए प्रमाणोंकी संख्याका नियम स्वतः ही सिद्ध हो जाता है, फिर उनमें भी तर्क नामक अन्य प्रमाणोंके मान जा पड़नेका कहाँ प्रसंग आया ? इस कारण इन सभी दार्शनिकोंका वचन विरुद्ध वचन नहीं है। ऐसी शंका होनेपर स्याद्वादवादी उत्तर देते हैं कि यद्यपि उनके हिसाबसे थोड़ी ऐसी बात हो तो भी उनमें आप्तता नहीं है क्योंकि उन सबके प्रमाणोंमें प्रामाण्यकी व्यावृत्ति है याने कोई प्रमाण स्वयं अपने आपका ज्ञान नहीं कर सकता है। अन्यथा अर्थात् प्रमाकी व्यावृत्तिका अभाव होनेपर अनेकान्तपना आ जाता है। देखिये ! ज्ञानाद्वैतमें अथवा अन्य अद्वैतोंमें स्वयंकी स्वयंसे प्रमा सम्भव नहीं हो सकती अर्थात् स्वयंकी दृढ़तापूर्ण जानकारी स्वयंसे ही नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि अद्वैतवादमें प्रमाण या कोई भी वस्तु निरंश होती है। यदि कोई ज्ञान अपनेको जाने तो ज्ञानमें दो अंश मानने पड़ेंगे ना, एक ज्ञायकपन दूसरा ज्ञेयपन। पर इस तरहके अंश जिन्होंने नहीं माने हैं, तब स्वके द्वारा स्वका ही ज्ञान करना इन अद्वैतवादियोंके यहाँ सम्भव नहीं है। तो जब यह ज्ञान निरंश हो गया तो किसी ज्ञानमें प्रमाण और प्रमेय ये दोनों स्वभाव न अवस्थित रह सके और तब ये दोनों स्वभाव अलग हो गए निरंश होनेके कारण, क्योंकि उन ज्ञानोंमें यदि यह कहते हैं कि प्रमाणरूप अंश है तो प्रमाण तो प्रमेयके बिना कुछ हो नहीं सकता या प्रमेयरूप अंश है ऐसा मानें तो प्रमेयपना भी प्रमाणके बिना न हो सका तो जब निरंश है इनके यहाँ तत्त्व तो प्रमाण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रमेय स्वभाव रहा नहीं। जब जानकारी न रहीं, प्रमाकी निवृत्ति हो गई तो कैसे स्वके द्वारा स्वका ज्ञान करना बतायें, यह युक्त हो सकता है। और, उस प्रमाका अभाव होनेपर याने जानकारीके अभावको अभाव होनेपर प्रमाता आदिक स्वभाव न हटें तो इनमें एकान्तपना न रहा। फिर तो स्याद्वादकी सिद्धि हुई। अब प्रमाता आदिक अनेक स्वभाव वाले एक ज्ञानको अनेकान्तात्मक स्वीकार कर लिया गया है। अर्थात् ज्ञान ही ज्ञाता है, ज्ञान ही ज्ञेय है और ज्ञान ही करण है, साधन है। इस प्रकार एक ज्ञानभावमें इतने अंश मान लेना यह तो स्याद्वादका आश्रय किए बिना नहीं बन सकता है। स्याद्वादमें ही ऐसी प्रतीति सम्भव है कि स्वयं स्वके द्वारा स्वमें जाना जा रहा है तो इन अद्वैतवादियोंके यहाँ स्वकी प्रमा नहीं बन सकती। तब एक ही तत्त्व है अद्वैत, तो वह निरंश है, प्रमाण प्रमेयकी वहाँ व्यवस्था नहीं तो वहाँ जाननेकी बात घटित नहीं होती।

प्रत्यक्षैकप्रमाणवादीके भी स्वप्रमाव्यावृत्ति होनेसे प्रामाण्यकी असिद्धि—इन्द्रियज प्रत्यक्षमें भी स्वप्रमोकी बात घटित नहीं होती, क्योंकि चार्वाकोंके द्वारा तो वह असम्विदित ही माना गया है। चार्वाक प्रत्यक्ष प्रमाणको स्वसंवेदी मानते ही नहीं हैं। तो इस तरह प्रत्यक्षमें भी स्वकी प्रमाकी व्यावृत्ति है। तो जहाँ स्वका ज्ञान ही सम्भव नहीं तब यह कहना कि प्रत्यक्षसे ही प्रमाण और अप्रमाण सामान्यकी व्यवस्था बन जायगी, यह अयुक्त है। और, जब स्वप्रमाकी सत्ता सिद्ध हो गयी अर्थात् अपने द्वारा ज्ञान अपने आपमें अपने आपको जान जाता है तब इस तरह प्रमाके अभावकी व्यावृत्ति बन गयी तो सिद्ध हो गया कि यह प्रमाण स्व और अर्थका निश्चय करने वाला है। तो स्वार्थ व्यवसायात्मकपन ज्ञानमें मानना यह तो स्याद्वादका आश्रय करना है और तब एकान्तपना न रहा इस कारण उनका स्वयं हठवाद तो खतम हुआ। आपेक्ष लगाकर दृष्टियाँ लगाकर तत्त्वको सिद्ध करनेकी बात रखें तो इसमें तत्त्वकी सिद्धि हो सकती है। स्याद्वादका आश्रय किए बिना अद्वैत मानना अथवा द्वैत मानना, कितने ही प्रमाण मानना, किसी प्रकार तत्त्व मानना उसकी सिद्धि बन ही नहीं सकती। इसका कारण यह है कि पदार्थ स्वयं अपने आपमें उत्पादव्यय ध्रौव्यका स्वभाव लिए हुए हैं। सम्भव स्थिति और विलय स्वरूपके माने बिना वस्तुकी सत्ता ही नहीं बन सकती। तब स्याद्वादका आश्रय लेकर तत्त्व सिद्ध करना चाहिए, उसे छोड़कर अपने ही उपगमसे कुछ भी स्वरूप मानना यह युक्तिसंगत नहीं है।

एक प्रमाणवादी अनेक प्रमाणवादी व शून्यवादी इन तीन भागोंमें विभक्त अन्य समस्त दार्शनिकोंके यहाँ स्वप्रमाव्यावृत्तिसे प्रामाण्य व आप्तताकी असिद्धि—इस प्रसंगमें दार्शनिकोंको तीन भागोंमें विभक्त किया है, एकप्रमाणवादी, अनेक प्रमाणवादी और शून्यवादी। जो केवल एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण मानते हैं चार्वाक वे एक प्रमाणवादी हैं और २, ३, ४, ६ इस तरह भिन्न-भिन्न संख्याओंमें प्रमाण

http://sahjanandvarnishastra.org/

मानते हैं वे हैं अनेक प्रमाणवादी, जैसे कि चार्वाकोंने एक प्रमाण प्रत्यक्ष माना बौद्धोंने और विशेषवादियोंने प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो प्रमाण माने, सांख्योंने प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमान ये तीन प्रमाण माने नैयायिकोंने प्रत्यक्ष, अनुमान उपमान और अर्थापत्ति ये चार प्रमाण माने, मीमांसकोंने ६ प्रमाण माने, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव और, शून्यवादी कोई प्रमाण ही नहीं मानते। तो यहाँ यह बतला रहे हैं इन दार्शनिकोंके ज्ञान प्रमाणरूप नहीं हैं क्योंकि एकप्रमाणवादोके प्रत्यक्षमें अपनी प्रमाकी निवृत्ति है अर्थात् उनका प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण स्वयं अपने आप की जानकारी नहीं रख सकता है। ज्ञान तो स्वपर व्यवसायी है, अपना भी निर्णय रखे और परका भी निर्णय रखे। तो यहाँ यह बतला रहे हैं कि इन दार्शनिकोंके यहाँ ज्ञान कोई अपनी प्रमा रख ही नहीं सकता। प्रमा कहते हैं दृढ़तम जानकारीको। सो एक प्रमाणवादियोंकी चर्चा ऊपर की गई है उस ही प्रकार अनेक प्रमाणवादियोंके भी अनेक प्रमाणोंमें अपनी प्रमाकी निवृत्ति है, यह स्वयं सिद्ध समझना चाहिए। जैसे कि प्रत्यक्ष अनुमान, आगम आदिक जो प्रमाण हैं उन प्रमाणोंमें यह सामर्थ्य नहीं है कि वह अपने आपकी भी जानकारी करले। और यदि जानकारी कर लिता है वह प्रमा तो इसमें अनेकान्त धर्म आ गया। अपनेको भी जानता है परको भी जानता है, फिर वह अस्वसम्विदित न रहा हाँ, अनेक शक्त्यात्मक अपने और पदार्थके निर्णय करने वाले ज्ञान ही प्रमाण सिद्ध होते हैं। तो एक प्रमाणवादीका प्रमाण भी अपने आपकी प्रमा नहीं कर सकता और अनेक प्रमाणवादियोंका प्रमाण भी अपनी प्रमा नहीं बना सकता। अब रहे शून्यवादी तो शून्यवादी तो शून्य ही मानता है किसी तत्त्वको मानता ही नहीं। दुनियामें ज्ञान है न दुनियामें ज्ञेय है, सबका अभाव मानने वाले शून्यवादी हैं तो उनमें अपनी प्रमाकी व्यावृत्ति स्वयं सिद्ध है। यदि प्रमाकी व्यावृत्ति न हो तो शून्यवादका एकान्त नहीं हो सकता।

सर्वथा नित्यवादी और सर्वथा अनित्यवादीके प्रामाण्य व आप्तत्त्वकी असिद्धि—उक्त प्रकार इन सबके नेतावोंमें आप्तपना नहीं है, यह दूषण तो दिया है उनके प्रमाणसे। अब यह बतलाते हैं कि उन्होंने जो कुछ प्रमाण माना उनमें परस्पर विरोध है इस कारण प्रमाणका प्रमाणपना ही नहीं ठहरता और जिसने केवल नित्य माना है अथवा किसीने ज्ञानको अनित्य माना है तो इस तरह सर्वथा नित्य और सर्वथा अनित्य भी नहीं होते। कथंचित नित्य है कथंचित अनित्यरूप है। जैसे कि नित्यवादी सांख्य अथवा ब्रह्माद्वैतवादी एक नित्य प्रमाणको कहते हैं। और, उसका हेतु देते हैं कि ज्ञानमें प्रमाणमें स्वभाव भेद नहीं है, ब्रह्म आदिकका उपादान कारण नित्य है, एक रूप है अतएव जो बुद्धियाँ हैं वे भी नित्य हैं और एक हैं। उसमें स्वभावका भेद नहीं है। ऐसा मानते हैं उनके सर्व प्रमाणोंकी निवृत्ति होती है। जब स्वभाव भेद ही नहीं है तो अनेक प्रमाण कहाँसे सिद्ध कर लेंगे ? उनका जब ज्ञान एक ही स्वभाव वाला है तो प्रत्यक्ष ज्ञान, अनुमान ज्ञान, अर्थापत्ति ये भेद कहाँसे उठ सकेंगे ? तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नित्यवादियोंकी तरह ये अनेक प्रमाण बन नहीं सकते। अब जो लोग एक ज्ञानको प्रतिक्षण अनित्य मानते हैं और उसका हेतु देते हैं कि उन ज्ञानोंमें स्वभाव भेद है, उनके यहाँ भी सर्व प्रमाणोंकी निवृत्ति है, प्रमाण सिद्ध हो नहीं सकता। क्योंकि अब तुमने प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंको नित्य एकान्तसे विरुद्ध माना, अर्थात् अनित्यका एकान्त किया लेकिन ज्ञान तो कथंचित् नित्यानित्यात्मकरूपसे ही प्राप्त होता है। तो जो ज्ञानको नित्य मानते हैं वे ज्ञानके भेद नहीं बना सकते। अगर ज्ञानके भेद बनाये कि प्रत्यक्ष अनुमान आदिक तो ज्ञानमें स्वभाव भेद हो गया और स्वभाव भेद होनेसे फिर ज्ञान सर्वथा नित्य न रहे। स्याद्वादमें तो जो सहज ज्ञान है स्वभाव है वह तो है नित्य अंश और उसकी जो पर्यायें हैं मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान आदिक वे हैं अनित्य और पर्याय दृष्टिसे सम्पूर्ण ज्ञान निरावरण ज्ञान भी प्रतिक्षण नवीन-नवीन वर्तता है तो पर्याय दृष्टिसे ज्ञान अनित्य है और स्वभाव दृष्टिसे ज्ञान ध्रुव है तो नित्या-नित्यात्मक जो स्वरूप माने उसके यहाँ तो भेद व्यवहार बन सकता है लेकिन जो सर्वथा नित्य मानते उनके यहाँ भी भेद व्यवहार नहीं बनता। और जो सर्वथा अनित्य मानते उनके यहाँ भी भेद व्यवहार नहीं बन सकता जिसको ज्ञान अनित्य है, स्वभाव भेद पड़ा है तो वे सब स्वतंत्र-स्वतंत्र पदार्थ हो गए। फिर उनमें भेद किस बातका ? इस कारण इन प्रमाणवादियोंके जो कि नित्य मानते हैं सर्वथा अथवा अनित्य मानते हैं ऐसा धर्म चलाने वाले उन पुरुषोंमें आप्तपना नहीं हो सकता।

प्रभुमें साधारण वचनादिका प्रतिषेध होनेसे वचनादि हेतुओं द्वारा प्रभुमें आप्तत्वके निराकरणकी अशक्यता—और भी बात सुनो ! देखिये, एकांत-वादियोंके यहाँ निरावरण ज्ञानका निराकरण वचन, इच्छा, बुद्धि और प्रयत्न ये कर दिया करते हैं, मगर प्रतिषेधवादियोंके ज्ञानके निरावरणपनेका ये वचनादिक निराक-रण नहीं कर सकते। यह बात बड़े रहस्यकी है। कैसे ? सो सुनो ! जो तीर्थका विच्छेद करने वाले सम्प्रदाय हैं याने मीमांसक तथा जो अन्य एकान्तवादी हैं उनके तो निरावरण ज्ञान नहीं है, क्योंकि जैसे साधारण पुरुषमें वचन इन्द्रियाँ, बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न पाये जाते हैं वैसे ही इसमें हैं। जैसे कि रास्तागीर जैसे वचन बोलता है इंद्रियाँ हैं, बुद्धि है, इच्छा है, कोशिश है तो वह सर्वज्ञ तो नहीं ? इसी तरह इन अन्य दर्शनों के प्रणेता जो पुरुष हैं उनमें ये सब बातें सामान्य पुरुषोंकी तरह पाई जाती हैं, वचन व्यवहार भी करते हैं, इन्द्रियाँ भी साधारण मनुष्यों जैसी हैं, बुद्धि प्रयत्न भी उस ही प्रकारके हैं। अतः इनमें आप्तपना नहीं बन सकता। लेकिन साधारण वचन आदिक का प्रतिषेध करने वाले स्याद्वादियोंके यहाँ यह दोष नहीं है क्योंकि आप्तका वचन साधारण पुरुषोंसे विलक्षण है, दिव्यध्वनि खिरती है, मुख जबानसे वचन नहीं बोलते हैं सो वचन सर्वज्ञके हैं इतना मात्र कहकर उनमें सर्वज्ञपनेका निषेध नहीं किया जा सकता। साधारण पुरुषोंमें जिस तरहके वचन निकलते हैं वैसे वचन आप्तके न होंगे। यदि उस ही प्रकारसे वचन व्यवहार करे कोई तो वह आप्त न होगा। इच्छा तो आप्तमें होती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही नहीं। जैसे ज्ञान पराधीन सावरण साधारण पुरुषोंके होता है वैसा ज्ञान आप्तके नहीं होता। तो वचनादिककी बात कहकर निरावरण ज्ञानका निराकरण करना उनके यहाँ ही सम्भव है, पर जो सामान्य वचन, इच्छा बुद्धि आदिकका प्रतिषेध करते हैं उन के सिद्धान्तमें आप्त निरावरण ज्ञानका खण्डन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उसके वचन युक्तिशास्त्रसे अविरुद्ध हैं। उनकी बुद्धि इन्द्रिय क्रमके व्यवधानसे परे है जब कि अन्य सम्प्रदायोंके नेतावोंका ज्ञान इन्द्रिय क्रमसे हो रहे मानते ही हैं। मीमांसक सिद्धान्तानुसारी पुरुषोंका ज्ञान कभी भी अतिन्द्रिय नहीं हो सकता। तो इस तरह क्रमसे जिसका ज्ञान चलता है इन्द्रिय क्रमका जिसमें व्यवधान बना है, उसमें सर्वज्ञता नहीं होती, लेकिन स्याद्वादियोंके माने गए आप्तमें जो ज्ञान होता है उसमें इन्द्रिय क्रमका व्यवधान नहीं है, और इच्छा तो रंच है नहीं, क्योंकि आप्त पुरुष इच्छासे रहित है इस कारण जिस प्रकारके वचन आदि निर्दोष ज्ञानका निराकरण करनेमें समर्थ है उस प्रकारका वचनादि प्रभुमें न होनेसे निराकरण ज्ञानका निराकरण नहीं होता अर्थात् कोई अनुमान बनाया कि किसी भी पुरुषके सर्वज्ञान निराकरण ज्ञान नहीं हो सकते क्योंकि वे वचन व्यवहार करते हैं, इच्छा बुद्धि उनके यहाँके पुरुषोंके समान है, हेतु निर्दोष ज्ञानके निराकरण समर्थ तो है, पर इसमें देखना चाहिये कि इस हेतुमें किस वचनकी बात कही गई है। तो जिस प्रकारके वचन आदिक निर्दोष ज्ञानका निराकरण करनेमें समर्थ हैं उस प्रकारके वचन आदिक प्रभुके स्याद्वाद सिद्धान्तमें नहीं माने गए हैं। तब तो स्याद्वादसिद्धान्तके जानने वाले पुरुषोंके द्वारा जो भगवानका स्तवन किया गया है उनमें ऐसे वचन ऐसी बुद्धि नहीं मानी गयी और इच्छाका तो पूर्णतया अभाव माना गया है, सो साधारण वचना'दका प्रतिषेध करने वालोंके आप्तत्वकी असिद्धि नहीं है। यह परम गहन सत्य तत्त्व युक्ति शास्त्रके न जानने वाले पुरुषोंके अगोचर है। केवल निर्दोष बुद्धिके द्वारा ही यह परख बन सकती है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि सर्वज्ञ है क्योंकि उसके सद्भावमें बाधक प्रमाण कोई नहीं।

कश्चिदेव भवेद्गुरुः का एक रहस्यार्थ– जिस कारणसे कि तीर्थ विच्छेद वाले सम्प्रदायोंमें सबकी आप्तता नहीं है तब फिर कौन है आप्त परमात्मा ? तो उसकी भी कारिकामें जो कश्चित् शब्द है यह शब्द ही उत्तर दे रहा है; कश्चित् शब्दमें दो पद हैं–कः और चित्। कौन है गुरु ? तो उसका उत्तर मिलता है–कः अर्थात् परमात्मा। एकाक्षरी कोशमें क का अर्थ परमात्मा किया गया है। कौन है परमात्मा ? तो कहते हैं चित् ही है, यहाँ चित् कहनेसे विशुद्ध चैतन्यका ग्रहण करना है। परमात्मा चैतन्य ही लब्धि उपयोग संस्कार जो कि आवरणके कारण है उनका विनाश होनेपर प्राणियों के प्रभु होते हैं। इस कारिकामें जो कहा गया है कि कश्चिदेव भवेद् गुरुः इससे शब्दों के अर्थपर ध्यान दें। क्या गूढ़ अर्थ इसमें पड़ा हुआ है ? कः मायने परमात्मा चित् मायने चैतन्य भवेत् मायने भवको धारण करने वाले प्राणी। भवं यान्ति इति भवेतः। भवेतां गुरुः इति भवेद्गुरुः। भवेद्गुरुका अर्थ हुआ भव धारण करने वाले अर्थात्

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संसारी जीवोंके गुरु कौन हैं ? क: चित् एव, परमात्मा चैतन्य ही गुरु है। तो यहाँ स्याद्वाद वाद न्यायमें विद्वेश के रखने वाले अर्थात् स्याद्वादसे विरुद्ध मंतव्य रखने वाले दार्शनिकोंके यहाँ सर्वज्ञपनेका निराकरण किया गया है। उनके यहाँ कोई आप्त नहीं हो सकता। तो उस निराकरणके किए जानेसे फलितार्थ यह सिद्ध करना कि स्याद्वादियोंके आप्त आक्षेपके योग्य नहीं हैं, उनमें कोई दोष नहीं दिया जा सकता है इस कारण बाधक प्रमाणमें असम्भवता सुनिश्चित् है। तब इस कारिकाका चतुर्थ चरण इस तरह व्याख्यामें लाना चाहिए कि क: मायने परमात्मा परमात्मा किसे कहते हैं ? जिसमें परम मा हो। पराका अर्थ है आत्यंतिक, अत्यंत अधिक और माका अर्थ है लक्ष्मी। आत्माकी लक्ष्मी ज्ञानभाव है। वह ज्ञानभाव जहाँ उत्कृष्ट पाया जाय उसे परमात्मा कहते हैं। तो क: मायने परमात्मा, चित् एव चित् ही है, यहां चित्का अर्थ है ज्ञानी, सर्वज्ञ, तो परमात्मा ही सर्वज्ञ होता है। अज्ञ प्राणी कभी भी आप्त नहीं होता। क: चित् इन शब्दोंमें जो चित् शब्द दिया गया है उस चित् शब्दका मुख्यवृत्ति से आश्रय लेना है अर्थात् जो साक्षात् निर्दोष पूर्णरूपसे ज्ञानरूप है वह चित् है, क्योंकि चित् शब्दका अर्थ गौणरूपसे कथंचित् अचेतन प्रतिबिम्ब आदिकमें भी प्रवृत्ति देखी जाती है अर्थात् प्रतिमाको भी चित् कह देते हैं जोकि मुख्यतया निश्चयसे अचेतन ही है उसे ग्रहण नहीं करना किन्तु जो साक्षात् चित् है सर्वज्ञ है उसे ग्रहण करना।

लब्धि उपयोग और संस्कारोंके विनाश होनेपर सर्वज्ञता होनेके कारण सर्वज्ञके ज्ञानमें अतीन्द्रिय प्रत्यक्षत्वके संदेहका अनवसर—यहाँ मीमांसक कहते हैं कि परमात्मा भी साक्षात् वस्तुको जानता हुआ इन्द्रिय संस्कारके अनुसार ही जानेगा अन्यथा न जान सकेगा अर्थात् इन्द्रिय संस्कारका अनुरोध न हो तो वह साक्षात् वस्तुको न जान सकेगा, क्योंकि इन्द्रिय संस्कारके बिना जो ज्ञान होगा वह प्रत्यक्षज्ञान हो ही नहीं सकता। और इन्द्रियके संस्कार एक साथ सर्व अर्थोंमें ज्ञानको उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि ज्ञान सम्बद्ध और वर्तमान पदार्थको ही विषय करता है। वह ज्ञान एक साथ समस्त अर्थोंमें जानकारी नहीं बना सकता। चक्षु आदिक इन्द्रियके द्वारा पदार्थ सम्बद्ध जाना जायगा और वर्तमान जाना जायगा इस कारण कोई सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता, क्योंकि भावी अतीत कालसे सम्बन्धित पदार्थोंका ज्ञान हो नहीं सकता, इस कारण चित्तमें आत्मामें आप्तपना भी रहता है। इस प्रकार सर्वज्ञका निराकरण करने वाले मीमांसकोंका यह मंतव्य युक्त नहीं है, क्योंकि प्रकृतमें जो वाक्य कहा है कि परमात्मा चेतन हो संसारी प्राणियोंका प्रभु है क्योंकि लब्धि उपयोग संस्कारोंका विनाश हो गया है तो हेतुमें यह विशेषण दिया गया है कि लब्धि-उपयोग और संस्कार इन तीनका विनाश हो चुका है, इस कारण वह सर्वज्ञ है। यहाँ लब्धिका अर्थ है ज्ञानावरण आदिकका क्षयोपशम। सो सर्वज्ञ भगवानके ज्ञानावरणके क्षयोपशमका अभाव है। उपयोग कहते हैं किसी विषयमें ज्ञानके लगानेको। तो यों ज्ञानके लगानेरूप वृति अब सर्वज्ञ अवस्थामें नहीं है। इन दोनोंका जो संस्कार है वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है अपने विषयकी धारणारूप। जो जाना, जिस तरहकी उनमें वृत्ति होती है उस तरहकी धारणा बनी रहना उसे कहते हैं संस्कार। संस्कार अर्थस्वरूप अर्थके ग्रहणकी उन्मुखताका नाम नहीं है। स्वरूपार्थ जाननेमें उन्मुख होनेका नाम उपयोग है और उपयोगकी परम्परामें उपयोगके विषयभूत पदार्थ ज्ञानकी धारणा होना इस संस्कार कहते हैं। तो लब्धि उपयोग और संस्कार इनका विनाश होनेपर ही सर्वज्ञ होता है। अतः यह कथन मीमांसकोंका कि इन्द्रिय संस्कारके अनुरोधसे ही परमात्मा साक्षात् वस्तुको जानेगा, यह अयुक्त है। इन्द्रिय और संस्कारोंका विनाश हो जानेपर ही परमात्मा सब कुछ जान सकता है। इस कथनसे यह सिद्ध हुआ कि सर्वज्ञ है, आप्त है, क्योंकि उसमें बाधक प्रमाणके असम्भव होनेका पूर्ण निर्णय है। उस आप्तके द्वारा प्रणीत जो शासन है वह शासन प्रमाणभूत है और उसके अनुसार वृत्ति बनानेसे जीव संसारके संकटोंसे परे हो जाता है। इससे अन्य पुरुषोंमें परस्पर विरुद्ध वचन होनेसे आप्तता नहीं है।

भावेन्द्रियके विनाशसे सर्वज्ञता होनेका सयुक्तिक वर्णन— अब यहाँ कोई शंका करता है कि जो यह कहा गया कि भावेन्द्रिय और संस्कारोंके विनाश होनेपर सर्वज्ञ होता ही है सो यह बात कैसे युक्त है कि भावेन्द्रियके विनाश होनेपर सर्वज्ञ हो और वहाँ द्रव्येन्द्रियके विनाश होनेकी बात न हो, अर्थात् जब कि यह कहा गया है कि अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे समस्त अर्थोंका परिज्ञान होता है तो अभी द्रव्येन्द्रियाँ लगी हों तो अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष कैसे बना? प्रयोजन यह है कि यदि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष होनेके लिये इन्द्रियका विनाश आवश्यक मानते हो तो द्रव्येन्द्रियका भी विनाश हो तब सर्वज्ञता होना चाहिये। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी शंका न करना चाहिए, क्योंकि आवरणका कारणसे तो भावेन्द्रिय है। द्रव्येन्द्रिय ज्ञानके आवरणके कारणसे ही है अर्थात् ज्ञानावरणके कारणसे द्रव्येन्द्रियकी उत्पत्ति नहीं है, द्रव्येन्द्रियकी उत्पत्ति तो अंगोपाङ्ग नामकर्मके निमित्तसे होती है। ज्ञानावरणके कारण तो भावेन्द्रिय होती हैं। तब समस्त रूपसे ज्ञानावरणका क्षय होनेपर ही भगवान अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष वाले हो जाते हैं यह सिद्ध है। इन्द्रिय प्रत्यक्षवान होनेमें अष्ट कर्मोंका विनाश कारण नहीं है किन्तु ज्ञानावरणका विनाश कारण है। कोई यहाँ यदि यह शंका करे कि ज्ञानावरणके विनाश होनेपर भगवान अतीन्द्रिय प्रत्यक्षवान हो जाते हैं इतने मात्रसे जब बात बनी तो भावेन्द्रियके अभावमें ही सर्वज्ञता कैसे कही गई? इस आशंकापर उत्तर देते हैं कि समस्त आवरणोंके क्षय होनेपर आवरणके कारण उत्पन्न होने वाली भावेन्द्रियका फिर होना सम्भव नहीं है। क्योंकि कारणके अभाव होनेपर कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। कारण है आवरण और कार्य है, भावेन्द्रिय। जब ज्ञानावरण न रहा तो भावेन्द्रिय कैसे रहेंगी?

आवरणके क्षयोपशममें उदयकी झांकी—अब यहाँ कोई शंका करता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि भावेन्द्रिय तो आवरणके क्षयोपशमके कारण होती हैं। जब ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होती है तब भावेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं इस कारण भावेन्द्रियोंसे आवरणके कारण हुई हैं ऐसा क्यों कहा गया ? इस आशंकापर उत्तर देते हैं कि भावेन्द्रियाँ किस तरह होती हैं इसे पहिले परखिये ! देशघाती ज्ञानावरणके स्पर्द्धकोंका उदय होनेपर और सर्वघाती ज्ञानावरणके स्पर्द्धकोंके उदयका अभाव होनेपर तथा जो सर्वघाती ज्ञानावरण स्पर्द्धक आगे उदयमें आ सकने वाले हैं उनके सत्ता अवस्थामें रहनेपर अर्थात् उपशम होनेपर भावेन्द्रियकी उत्पत्ति होती है। तब यह बात न रही कि भावेन्द्रिय आवरणके कारणसे नहीं है। आवरणके निमित्तसे ही ये भावेन्द्रियाँ हैं। व्यक्तरूपसे तो इस प्रसंगमें देशघाती स्पर्धकका उदय बताया ही गया है। आवरणके विनाश होनेपर तो सर्वज्ञता बनती है, सो जब तक आवरण है तब तक आवरणके निमित्तसे भावेन्द्रियाँ हैं, अतः भावेन्द्रियोंका विनाश होनेपर सर्वज्ञता होती है।

संसारी प्राणियोंसे संसारी प्राणियोंके प्रभुकी विलक्षणता—अब यहाँ मीमांसक शंका करता है कि यहाँ कोई भी प्राणी अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष वाला नहीं पाया जाता, जिससे कि हम भगवानमें अतीन्द्रिय प्रत्यक्षपनेकी कल्पना कर सकें। जब हमें भगवानके अतीन्द्रिय प्रत्यक्षपनेके लिए यहाँ कोई उपमा मिले जिससे यह परख सकें कि इसकी तरह भगवान अतीन्द्रियज्ञान वाले हैं सो ऐसा कोई भी प्राणी नजर नहीं आता जो कि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष वाला हो। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह शंका करना सही नहीं है क्योंकि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष वाला भगवान तो इन प्राणियोंका प्रभु है। प्राणियोंकी समानतामें देखा गया धर्म समस्त प्राणियोंके प्रभुमें नहीं मिलाया जा सकता है, क्योंकि समस्त प्राणियोंका प्रभु तो संसारी प्राणियोंकी प्रकृतिसे परे हो गया है। सो यहाँ यदि कोई प्राणी अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष वाला नहीं मिलता है तो उससे भगवानके अतीन्द्रिय प्रत्यक्षपनेकी सिद्धिमें बाधा नहीं आती। सो कोई अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष वाला है उसके ही वचन दिव्यध्वनि प्रतिपादन शासन युक्ति शास्त्रके अविरोधी होनेसे वही आप्त हो सकता है।

प्रत्यक्ष और अनुमानसे सर्वज्ञके अभावको सिद्ध करनेका मीमांसकका कथन—अब यह मीमांसक बड़े विस्तारसे सर्वज्ञके अभावकी सिद्धि करना चाह रहे हैं, मीमांसक कहते हैं कि जो बाधक प्रमाणके असम्भव होनेका निर्णय कह कर प्राणियों का प्रभु सर्वज्ञकी सिद्धि करना चाहते हैं तो आपका यह हेतु असिद्ध है। सर्वज्ञकी सिद्धि में हेतु क्या दिया है कि सर्वज्ञ सिद्धिमें बाधक प्रमाण असम्भव है, सो यह हेतु असिद्ध यों है कि इसका बाधक प्रमाण यह है कि सर्वज्ञके साधक प्रमाणकी असम्भवता है। साधक प्रमाण कुछ नहीं है जो सर्वज्ञको सिद्ध कर सके, यही तो बाधक प्रमाण हुआ। इस लिए देखिये कि सर्वज्ञको सिद्ध कर सकने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान तो है नहीं, यह तो स्पष्ट है। यहाँ किसीको भी प्रत्यक्षसे सर्वज्ञ नजर नहीं आ रहा है। और, सर्वज्ञका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

साधक अनुमान प्रमाण भी नही है इसका कारण यह है कि अनुमानका एक अंग है लिङ्ग, हेतु साधन। सो अनुमानका साधक कोई साधन नहीं देखा जा रहा है। तो सर्वज्ञ तो इस समय हम लोगोंके द्वारा देखा नहीं जा रहा, सो तो प्रत्यक्षसे असिद्ध है, और ऐसा कोई हेतु साधन भी नजर नहीं आता कि जो सर्वज्ञका अनुमान कर सके। तो सर्वज्ञकी सिद्धि प्रत्यक्षसे नही हुई, अनुमानसे नहीं हुई।

आगमसे भी अर्वज्ञकी सिद्धि होनेका मीमांसकका कथन—आगमसे भी सर्वज्ञके अभावकी सिद्धि नहीं हो सकती कैसे कि देखो! आगमके विषयमें दो कल्पनायें की जा सकती हैं एक तो आगम नित्य हो सकता है दूसरे आगम अनित्य माना जा सकता है। तो नित्य आगम तो सर्वज्ञका प्रतिपादन करने वाला है नहीं क्योंकि नित्य आगमकी प्रमाणता कार्य अर्थमें ही है। नियोग अर्थ भावना अर्थमें नित्य आगमकी प्रमाणता है। यदि स्वरूप अर्थमें भी प्रमाणता मान लो जाय तो इसमें अतिप्रसंग होगा। जब यह वाक्य आया कि तूंमिया पानीमें डूबती है, पत्थर पानीपर तैरते हैं तो इसमें भी प्रमाणता आ बैठेगी। या स्वरूप निरूपक जो वाक्य है जैसे कि जल पवित्र है तो इसमें भी प्रमाणता आ जायगी पर वेद नित्य आगम तो भावना और नियोग अर्थमें ही प्रामाण्य रखता है। जो ये श्रुतिवाक्य है स सर्ववित् स लोकवित्, हिरण्यगर्भः सर्वज्ञः अर्थ देखिये! जो यज्ञ करता है वह सर्ववेदी है, वह लोकवेदी है आदिक वाक्योंसे और हिरण्य गर्भ सर्वज्ञ है आदिक वाक्योंसे कोई यह शंका करने लगे कि देखो आगममें भी सर्वज्ञकी बात कही गई है सो यह बात नहीं है। सर्ववित् सर्वज्ञ आदिक शब्दोंसे जो आगममें वर्णन है वह केवल यज्ञकी प्रशंसा करनेके लिए है। नित्य आगम तो यज्ञ कर्मकी प्रशंसा करने वाला और यज्ञ कर्म आदिककी स्तुति करने वाला है। तो उन वाक्योंका तात्पर्य सर्वज्ञरूप पदार्थके लिए नहीं है। उन वचनोंकी प्रधानता स्तुति अर्थके कहनेमें है तो स्तुति प्रशंसा प्रधान वचनोंके द्वारा किसी अन्यमें सर्वज्ञपने का विधान नहीं किया जा सकता है। कोई ऐसा सन्देह करे कि आगमके द्वारा ही तो सर्वज्ञका कथन हो रहा है सो बात नहीं। क्योंकि किसी प्रमाणसे जो प्रसिद्ध ही नहीं है उस बातका वेद वाक्यों द्वारा आगम द्वारा कथन सम्भव नहीं हो सकता है। तो इस प्रकार नित्य आगम तो सर्वज्ञका प्रतिपादक नहीं है। साथ ही यह जानों कि नित्य आगम आदिमान सर्वज्ञका प्रतिपादन कर ही नहीं सकता, क्योंकि इन दो बातोंका विरोध है कि आगम नित्य हो और आदिमान सर्वज्ञका उसमें प्रतिपादन हो। आदिमान सर्वज्ञका भाव यह है कि सर्वज्ञके सम्बन्धमें ऐसा ही तो प्रतिपादन होगा कि सर्वज्ञ था, सर्वज्ञ होगा सर्वज्ञ है अथवा होना है तो सर्वज्ञ होगा, इसमें भी सर्वज्ञ हो आदि आ गई। सर्वज्ञ था इसमें भी आदि ध्वनित है और सर्वज्ञ है इसमें भी आदि ध्वनित है तथा तीन कालके भेदसे सर्वज्ञका जो तीन रूपोंसे प्रतिपादन है वह नित्य आगमका कार्य नहीं हो सकता। तो नित्य आगमसे सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रणीत आगमसे भी सर्व असिद्धिकी अशक्यताका आरेकन— यहाँ मीमाँसक ही कहे जा रहे हैं कि सर्वज्ञकी सिद्धि करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। प्रत्यक्षसे सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं हुई, अनुमानसे भी सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं हुई नित्य आगमसे भी सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं होती। अब यदि यह कहो कि अनित्य आगम सर्वज्ञ की सिद्धि करने वाला बन जायगा सो भाई देखो कैसी गजबकी बात है कि सर्वज्ञके द्वारा प्रणीत तो वह अनित्य आगम है और वही आगम सर्वज्ञका प्रकाशक बने, इस कथनमें प्रथम तो यह बात है कि इसमें प्रामाण्यकी गुंजाइश यों नहीं कि उस होने तो बताया और उस हीको सर्वज्ञ बताया है तो अपने आपके द्वारा रचे गए शास्त्रमें अपनी प्रशंसाकी बात कहे तो यह तो लोकव्यवहार है, उसमें प्रमाणता क्या ? और फिर दूसरी बात यह है कि सर्वज्ञ प्रणीत अनित्य आगममें सर्वज्ञताका कथन समझना यह इतरेतरा दोषसे युक्त है। जब यह सिद्ध हो ले कि आगम सर्वज्ञका प्रतिपादक है और जैसे कि यहाँ प्रसंग चल रहा है यह सिद्ध होले कि आगम सर्वज्ञका प्रतिपादक है तब यह सिद्ध हो कि आगम सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत है। यदि कहो कि अन्य पुरुषके द्वारा प्रणीत आगम सर्वज्ञका प्रतिपादक बन जायगा तो यह भी बात प्रमाणभूत नहीं है, क्योंकि अन्य मनुष्य अर्थात् अल्पज्ञ पुरुष जो वचन कहे वह प्रमाणभूत कैसे माना जायगा. जिससे कि उस ही के वचनसे सर्वज्ञका ज्ञान कर लिया जाय, और प्रामाण्य-रहित असर्वज्ञ प्रणीत वचनसे यदि सर्वज्ञकी प्रतिपत्ति मान रहे हो तब इतना भी कष्ट क्यों करते ? अपने ही वचनसे क्यों नहीं सर्वज्ञकी प्रतिपत्ति मान लेते हो ? क्योंकि जैसे तुम अल्पज्ञ हो वैसे ही आगमके बनाने वाले अन्य पुरुष भी अल्पज्ञ हैं। वचन दोनोंके एक समान हैं। अतः यह सिद्ध हुआ कि आगमकी विधि भी सर्वज्ञका बोध नहीं करा सकती, क्योंकि नित्य आगमका तात्पर्य तो सर्वज्ञके बारेमें स्तुति मात्र ही करना है। वह उन श्रुति वाक्योंका वास्तविक तात्पर्य नहीं हैं उनका तात्पर्य तो यज्ञ आदिक कर्मोंमें लगाने, व्यापार करना आदिक है। तो अन्य अर्थोंमें प्रधान वचनों द्वारा सर्वज्ञका प्रमाण न हुआ, और जो पहिले किसी प्रमाणसे ज्ञात नहीं हुआ है उसका कथन करना भी शक्य नहीं है। अनादि आगम और फिर आदिमान सर्वज्ञका प्रतिपादन करे यह कैसे युक्त हो सकता है ? और कृत्रिम आगम तो असत्व है, उसके द्वारा सिद्धि कैसे हो सकती है ? यदि कृत्रिम आगमसे सर्वज्ञ मानते हो तो तुम खुद ही कह रहे हो, इस ही को सर्वज्ञ मान बैठो। तो इस तरह किसी भी प्रकार आगमसे सर्वज्ञ कि सिद्ध नहीं होती।

उपमान व अर्थापत्ति प्रमाणसे भी सर्वज्ञसिद्धिके अभावका मीमांसक द्वारा कथन—जैसे प्रत्यक्ष अनुमानसे आगमसे सर्वज्ञकी सिद्धि न बनी इसी प्रकार उपमान प्रमाणसे भी सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं होती। उपमान प्रमाण वहाँ अर्थका साधक है जहाँ साध्य अर्थके समान अन्य कोई वस्तु नजरमें आये। उपमा देनेसे बनता है उपमान, यह उनके समान है, तो जब दोनों नजर आये जिसमें कि समानता सिद्ध की जा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रही है तब ही तो उपमान प्रमाणका उपयोग होगा, लेकिन सर्वज्ञके सदृश संसारमें कोई प्राणी दृष्टिगोचर है ही नहीं तब उपमान प्रमाण सर्वज्ञका साधक कैसे हो सकता है ? यदि सर्वज्ञके समान किसी प्राणीको हम इस समय देख पायें तब ही तो उपमान प्रमाणसे सर्वज्ञको जान सकेंगे। तो जिस तरह प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान सर्वज्ञके साधक न हो सके, उस ही प्रकार अर्थापत्ति प्रमाण भी सर्वज्ञका साधक नहीं हो सकता, क्योंकि अर्थापत्तिका उत्थापक, व्यक्त करने वाला कोई पदार्थ अन्यथा अनुपपद्यमान होता है याने न उत्पन्न हो सकने वाला कोई पदार्थ सो ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो कि सर्वज्ञके विना अनुत्पद्यमान हो ? यदि कोई ऐसा सोचे कि धर्म आदिकके विषयमें जो उपदेश दिया गया उससे यह सिद्ध हो जायगा कि सर्वज्ञ है। यदि सर्वज्ञ न होता तो धर्म आदिकका उपदेश सम्भव न होता। सो यह बात यों युक्त नहीं कि धर्म आदिकका उपदेश सर्वज्ञके अभावमें भी सम्भव है, क्योंकि वह बहुतः मनुष्योंके द्वारा परिगृहीत है। कथित भी है और ग्रहण किया गया भी है बुद्ध आदिक नेतावों का धर्म अधर्म आदिकके सम्बन्धमें उपदेश जो हुआ वह तो सर्वज्ञके अभावमें भी बन सकता है। बुद्ध आदिक वेदके ज्ञाता नहीं. उन्होंने तो केवल व्यामोहसे ही उपदेश किया है। किन्तु जो त्रिवेदके ज्ञाताओंके प्रधान हैं अर्थात् ऋजुवेद, सामवेद, यजुर्वेदके ज्ञाताओंमें प्रधानरूपसे मनु आदिक प्रसिद्ध हुए हैं और उन त्रिवेदियोंके द्वारा व्याख्यान किए गए जो स्मृति ग्रन्थ हैं वे सब वेदसे उत्पन्न हुए वचनको ही कहते हैं। तो इस प्रकार सर्वज्ञकी सिद्धि करने वाला न प्रत्यक्ष ज्ञान हो सका न अनुमान, आगम, उपमान और न अर्थापत्ति प्रमाण बन सका। प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान व अर्थापत्ति इनके अलावा और कोई ऐसा प्रमाणान्तर है नहीं जो सत्त्वका उपलम्भक हो। वस्तु सत्त्व सिद्ध करने वाले ये ५ प्रमाण हैं। अभाव प्रमाण तो अभावको ही सिद्ध करता है सो अभाव प्रमाणके द्वारा सर्वज्ञकी सिद्धि ही क्या होगी ? जो सत्त्व साधक हैं वे प्रमाण भी सर्वज्ञके साधक नहीं हैं।

अत्रत्यलोकप्रत्यक्षकी भांति अन्यदेशकालवासियोंके प्रत्यक्ष द्वारा भी सर्वज्ञसिद्धिकी अशक्यताका मीमांसक द्वारा कथन— यहां मीमांसक कह रहे हैं कि यदि कोई ऐसा कहे कि इस जगह इस समय हम जैसे लोगोंको प्रत्यक्ष आदिक ज्ञान सर्वज्ञका साधक नहीं है तो न होवे किन्तु अन्य देशमें अन्य कालमें रहने वाले किन्हीं लोगोंको सर्वज्ञका साधक ज्ञान हो जाता होगा, यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि जिस जाति वाले प्रमाणके द्वारा जिस जाति वाले पदार्थका दर्शन होता है उस जाति वाले लोगोंको उस ही जाति प्रमाणके द्वारा उस ही जातिके पदार्थोंका दर्शन सर्वत्र हो सकता है अर्थात् जैसे हम लोगोंका यहांका प्रत्यक्ष सर्वज्ञका साधक नहीं है इसी प्रकार किसी भी जगहके किसी भी समयके लोगोंका भी प्रत्यक्ष सर्वज्ञका साधक नहीं हो सकता। उसके अनुमानका प्रयोग भी है कि विवादापन्न देशकालमें प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण इस जगहके इस समयके प्रत्यक्ष आदिक द्वारा ग्राह्य पदार्थोंकी जाति, वाले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थोंका ही ग्राहक हो सकता है, उससे विजातीय जो सर्वज्ञ आदिक पदार्थ हैं उनका ग्राहक नहीं हो सकता क्योंकि वह प्रत्यक्ष प्रमाण ही तो है। जैसे कि इस जगहके इस समयके लोगोंके प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण सर्वज्ञ आदिक अर्थके ग्राहक नही होते हैं। यह अनुमान प्रयोग इसलिए किया गया है कि जिन लोगोंके मनमें यह सन्देह हो कि हम लोगोके प्रत्यक्षसे तो यहाँ सर्वज्ञका ज्ञान नही हो रहा किन्तु किसी दूसरे देशमें किसी भी समयमें किन्हीं लोगोंका प्रत्यक्ष सर्वज्ञका साधक ज्ञान बन जायगा। उसके उत्तरमें यह अनुमान प्रयोग किया गया है कि अन्य देशकालमें लोगोंका प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण सर्वज्ञ आदिक अर्थोंको न जान सकेगा, क्योंकि वह भी तो प्रत्यक्ष प्रमाण है। जैसे कि हम सब लोगोंका प्रत्यक्ष प्रमाण सर्वज्ञका साधक नहीं बनता।

सर्वज्ञवादियोंकी ओरसे अन्यदेशकालमें सम्भव अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे सर्वज्ञकी सिद्धिका कथन—अब यहाँ सर्वज्ञवादियोंके पक्षकी ओरसे कहा जा रहा है कि जिस प्रकारका इन्द्रियादिजन्य प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण सर्वज्ञ आदिक पदार्थोंका असाधक देखा गया है क्या उस ही प्रकारके प्रत्यक्षादिसे अन्य देश कालमें सर्वज्ञादि अर्थके अभावका सिद्ध करते हो अर्थात् सर्वज्ञका उस प्रमाणको असाधक सिद्ध करते हो या अन्य प्रकारके ज्ञानका सर्वज्ञका असाधक बताते हो ? यहाँ यह पूछा जा रहा है कि अन्य देशकालवासियोंका भी प्रत्यक्षादि ज्ञान सर्वज्ञको सिद्ध नहीं करता ऐसा जो कह रहे हो तो क्या वह प्रत्यक्षज्ञान ऐसा ही अन्य लोगोंका जैसा कि यहाँ इन्द्रियजन्य ज्ञान हम आपका है या हम आप लोगोंके इन्द्रियजज्ञानसे विलक्षण कोई अन्य प्रकारका ज्ञान है ? यदि यह कहो कि जिस प्रकारका यहाँ हम लोगोंका इन्द्रिय प्रत्यक्ष आदिक ज्ञान सर्वज्ञ आदिका असाधक है उस ही प्रकारके प्रत्यक्ष प्रमाणसे अन्य देश कालमें भी सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं होती यह कहा जा रहा है। तब तो ठीक है सिद्ध साधन है। सही बात है कि हम लोगों जैसा इन्द्रियजन्य ज्ञान किसी भी देशमें, किसी भी समय किसी के भी हो वह सर्वज्ञका साधक नहीं बन सकता। यदि कहो कि अन्य प्रकारका ज्ञान सर्वज्ञका असाधक है यह कह रहे याने अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष अन्य देश अन्य कालमें सर्वज्ञ साधक नहीं है। यदि ऐसा मानते हो तो यह हेतु अप्रयोजक है। अर्थात् यह हेतु किसी काममें आने वाला नहीं है। जैसे कि कोई इस लोकको ईश्वरकृत माननेके लिए यह हेतु दे कि यह सारा जगत ईश्वरकृत है क्योंकि आकारविशेष होनेसे। तो आकारविशेष तो अनेक पदार्थोंका है जो बुद्धिमानोंके द्वारा नहीं बनाया गया, स्वयं हैं। यो जैसे वह हेतु अप्रयोजक है इसी प्रकार यह कहना कि हम लोगोंके होने वाले प्रत्यक्ष ज्ञानसे विलक्षण अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष सर्वज्ञका साधक नहीं है यह हेतु अप्रयोजक है। सो इस हेतु द्वारा सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता।

अन्य प्रत्यक्ष अस्मदादि प्रत्यक्षसे विलक्षण न होनेसे सर्वज्ञ सिद्धिके अभावका मीमांसक द्वारा कथन—उक्त कथनके विषयमें मीमांसक लोग कहते हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि यह कथन असत्य है क्योंकि हम लोगों जैसा प्रत्यक्ष ज्ञानकी तरहका अन्य देश-वासियोंका प्रत्यक्ष ज्ञान है, उसमें ही सर्वज्ञकी असिद्धि बता रहे। हमारा जैसा ही ज्ञान अन्य देश अन्य काल वालोंका है और वह सर्वज्ञका असाधक है, तथा ऐसा कहने पर सिद्ध साधन भी नहीं होता क्योंकि अन्य प्रकारका प्रत्यक्ष होता ही नहीं है। यदि हम लोगोंके प्रत्यक्षसे विलक्षण कोई प्रत्यक्ष ज्ञान होता तो कह सकते थे कि यह हेतु अप्रयोजक है। लेकिन जैसे हम लोगोंके प्रत्यक्ष आदिक ज्ञान होते हैं उनसे विलक्षण तो कोई ज्ञान होता ही नहीं है, इस कारण सिद्ध साधन दोष नहीं आता। इस बात की सिद्धि अनुमान प्रयोगसे भी हो जाती है कि विवादापन्न प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण इन्द्रियादि सामग्री विशेषकी अपेक्षा न रखता हुआ नहीं होता, प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण होनेसे जैसे कि हम लोगोंका प्रसिद्ध प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण है। इस अनुमानमें यह बात बताई गई है—अन्य देश अन्य कालमें प्रत्यक्ष किसीका अतीन्द्रिय हो सकता है, ऐसा सर्वज्ञवादियोंके द्वारा कहा जानेपर यह कहा जा रहा है कि अन्य देशकालवादी पुरुषोंका ज्ञान कैसा है? यह अभी विवादमें पड़ा हुआ है ना, तो विवादमें पड़ा हुआ भी ज्ञान हम लोगों जैसा ही ज्ञान है यह सिद्ध किया जा रहा है हमारे ज्ञानसे विलक्षण कोई अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं है, क्योंकि वह ज्ञान जिसमें कि विवाद उठ रहा है वह इन्द्रियादिक सामग्री विशेषकी अपेक्षा रखता है, क्योंकि वह भी प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण है, प्रसिद्ध हम लोगोंके प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणकी तरह।

यहां ही अनेक जीवोंका प्रत्यत्र अस्मदादि प्रत्यक्षसे विलक्षण देखा जानेसे मीमांसकोक्त हेतुमें अनैकान्तिक दोषकी आपन्नताकी चर्चा—यहीं कोई यह शंका न करे कि गीधका प्रत्यक्ष अथवा सूकरका प्रत्यक्ष, चींटियोंका प्रत्यक्ष जैसे बहुत दूरसे पदार्थोंको जान लेता है गीध बहुत दूरके पदार्थोंको देख लेता है और हम लोग नहीं देख पाते, सूकर बहुत दूरके शब्दोंको सुन लेता है हम लोग नहीं सुन पाते, चींटियाँ घ्राण इन्द्रियसे अनेक वस्तुओंका दूरसे प्रत्यक्ष ज्ञान कर लेती हैं तो यह कहना कि अन्यदेश अन्य कालमें जीवोंका जो प्रत्यक्ष होता है वह हम जैसा ही प्रत्यक्ष है सो बात तो न रही। यहाँ ही देखा जा रहा है कि हम लोगोंके प्रत्यक्षसे विलक्षण प्रत्यक्ष हुआ करते हैं जीवोंके। हम लोग तो निकट देशकी अपेक्षा रखते हैं तब हम प्रत्यक्षसे जान पाते हैं, लेकिन गीध, सूकर, चींटी आदिकने तो देशविशेषकी अपेक्षा ही नहीं रखी। बहुत दूर देशमें स्थित पदार्थोंको भी वे जान लेते हैं। तब देखो हम लोगों के प्रत्यक्षसे विलक्षण उनका प्रत्यक्ष हुआ ना। और भी देखिये! बिलाव, उल्लू, चूहा आदिकका जो प्रत्यक्ष है वह प्रकाशकी अपेक्षा नहीं रखता और वे अच्छी तरह स्पष्ट देख लेते हैं, लेकिन हम लोगोंका प्रत्यक्ष तो प्रकाशकी अपेक्षा रखता है। तब यही देख लो कि हम लोगोंके प्रत्यक्षसे विलक्षण प्रत्यक्ष भी होते हैं जीवोंके। और, भी देखलो, कात्यायन आदिक ऋषियोंको अनुमान ज्ञान विषयक बड़ा अतिशय था अर्थात् वे अनुमान ज्ञानके सम्बन्धमें बहुत विशिष्ट ज्ञान रखते थे जैसा ज्ञान हम आप लोग नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रखते। तो हम आप लोगोंके प्रत्यक्षसे विलक्षण ज्ञान हुआ ना, यहीं कात्यायन आदिक का ? जैमिनी आदिक ऋषियोंके आगमका अतिशय माना है उनके भक्तोंने। उनको आगम विषयक धर्म रहस्य अर्थ आदिकका अत्यन्त अधिक ज्ञान था, जैसा कि ज्ञान हम आप लोगोंके नहीं पाया जाता। इस कारण आपका हेतु अनैकान्तिक है।

किसीका भी ज्ञान अस्मदादिप्रत्यक्षसे विलक्षण न होनेसे स्वोक्त हेतुमें अनैकान्तिकान्तिक दोषके निवारणका मीमांसक द्वारा प्रतिपादन—उक्त आरेकापर मीमांसक उत्तर देते हैं कि जिन जिनके ज्ञानकी अभी बात कही गई है गीध, सूकर, चींटियाँ, बिलाव, कात्यायन, जैमिनी आदिक ऋषि उन सबका ज्ञान इन्द्रिय आदिककी एकाग्रतारूप सामग्री विशेषके बिना नहीं होता। तब हम लोगोंके प्रत्यक्षसे विलक्षण प्रत्यक्ष कैसे हो गया ? साथ ही यह समझिये कि कोई ज्ञान अपने नियत विषयका उल्लंघन नहीं कर सकता। चाहे कुछ इसमें अतिशय हो जाय, विशेष ज्ञान बन जाय लेकिन अपने नियत विषयका उल्लंघन कभी नहीं होता। और, अतीन्द्रिय अथवा अननुमेय जो अनुमानको जाननेमें नहीं आ सकता, ऐसे पदार्थोंका ज्ञान नहीं कर पा रहा इन सब जीवोंका प्रत्यक्ष। इस कारण इन जीवोंके प्रत्यक्षसे हमारे अनुमानमें दोष देना अयुक्त है। जहाँ भी अतिशय देखा गया है जिस किसी भी इन्द्रियजन्य ज्ञान में कमी खूबी देखी गई है वह खूबी कितनी ही बढ़ जाय मगर अपने नियत विषयका उल्लंघन नहीं कर सकती। जिन जीवोंके ज्ञानकी अभी चर्चा की है उन्होंने इन्द्रियका नियत विषय ही तो जाना। गीधने बहुत दूरसे देखा किन्तु देखा तो रूप ही चक्षुइन्द्रिय से ही, कर्णइन्द्रियसे तो नहीं देख लिया। नियत विषयका उल्लंघन तो नहीं हुआ। सूकरोंने बहुत दूरसे शब्द सुना, तो भले ही सुन लें पर कर्णइन्द्रियसे ही तो सुना अन्य इन्द्रियसे तो नहीं जाना। तो इनका ज्ञान सबमें चाहे कितना ही खूबीको लिए हुए हो लेकिन अपने नियत विषयका उल्लंघन नहीं करता। अब यहाँ बुद्धिमान पुरुषोंके ज्ञान की अतिशयपर विचार करिये जो भी मनुष्य बुद्धिके द्वारा बड़े सातिशय देखे गए हैं वे भले ही ज्ञानमें बढ़ गए लेकिन थोड़ा ज्यादह और ज्यादह इस तरह तो अधिकता बन गयी पर उनका अतीन्द्रिय ज्ञान नब नहीं गया बड़े २ बुद्धिमान पुरुष भी बड़े सूक्ष्म अर्थ को जान लेनेमें समर्थ हो जायें पर अपनेमें—अपने विषयोंका उल्लंघन नहीं करते। एक शास्त्रके विचारमें महान अतिशय देखा गया है ठीक है पर इतने मात्रसे कि एक शास्त्रमें किसीकी निपुणता हो गयी तो अन्य शास्त्रोंके ज्ञानमें तो अतिशय नहीं बन गया। वैयाकरण लोग बहुत दूरसे ही याने थोड़े ही कथनसे, जरासे ही विचारसे शब्द अपशब्दका निर्णय कर लेते हैं, यह शब्द सिद्धि सही है यह सही नहीं है यह निर्णय कर लेते हैं तो करलें किन्तु एक व्याकरण विषयक ज्ञानसे वे वैयाकरण नक्षत्र तिथि ग्रहणके निर्णयमें तो अतिशय वाले न बन जायेंगे। बड़े—बड़े ज्योतिषी चन्द्र सूर्यके ग्रहण आदिककी जानकारीमें बड़े कुशल हो जायें, पर वे भवति आदिक शब्दोंकी साधना जाननेमें तो उतने कुशल नहीं हैं। कोई पुरुष वेद इतिहास आदिकके ज्ञानमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बड़ा सातिशय बन जाय लेकिन वह स्वर्गदेवता पुण्य पाप आदिकके प्रत्यक्ष करनेमें तो समर्थ न हो जायगा। कोई मनुष्य यदि १० फिटका ऊँचा कूद जाता है तो कूद जाय मगर इतना कूद जानेका अर्थ यह तो न बन जायगा कि वह कोश दो कोश तककी छलांग मार सकता है। तो इन सब बातोंसे यह बात सिद्ध हुई कि जो लोग ज्ञानमें अतिशयवान हैं वे भले ही सातिशय बन जायें लेकिन उनका वह ज्ञान भी अपने नियत विषयका उल्लंघन नहीं कर सकता। इसी प्रकार हम लोगोंके यहाँ देखे गए जो प्रत्यक्ष आदिक ज्ञान हैं उनसे विजातीय अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष आदिककी सम्भावना नहीं है। जैसे हम लोगोंके प्रत्यक्ष आदिक ज्ञान होते हैं उस ही प्रकारके उनके होसकते हैं, हम लोगों से विलक्षण नहीं हो सकते। और, इसी कारण हमारे दिए गए साधनमें व्यभिचार सम्भव ही नहीं हो सकता। कभी भी देशमें किसी भी कालमें किन्हीं भी लोगोंका प्रत्यक्ष हम लोगोंके प्रत्यक्षसे विजातीय न हो जायगा।

सर्वज्ञसाधक प्रमाण न होनेसे सर्वज्ञका अभाव माननेकी मीमांसक शंकाका उपसंहार— यदि कोई मनमें शंका रखे कि किसी पुरुष विशेषके तो अतीन्द्रिय प्रत्यक्षकी सम्भावना है तब हेतुका व्यभिचारी होना तो सम्भव ही हो गया। तो मीमांसक कहते हैं कि ऐसी शंका उनको हृदयमें न रखना चाहिए, क्योंकि इस तरहका पुरुषविशेष ही असिद्ध है याने हम लोगोंके ज्ञानसे विलक्षण अतीन्द्रिय आदिक ज्ञान हो जाये ऐसा पुरुष विशेष सिद्ध ही नहीं है, क्योंकि सभी पुरुषोंका जो ज्ञान होगा वह अत्यन्त दूर, अत्यन्त भूत और अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाला नहीं होता। इस कारण किसी भी देशमें, किसी भी कालमें, किन्ही भी जीवोंके प्रत्यक्षज्ञान होगा तो वह हम जैसा ही प्रत्यक्ष ज्ञान होगा, दूसरी प्रकारसे नहीं हो सकता। यहाँ मीमांसक आप्तपनेका ही निराकरण कर रहे हैं कि जगतमें कोई आप्त होता ही नहीं, फिर आप्तकी मीमांसा करनेका कोई अर्थ ही नहीं है। किसी भी ऐसे प्रभुका साधक न प्रत्यक्ष ज्ञान है, न अनुमान, न आगम, न अर्थापत्ति, न उपमान। कोई भी सत्त्वकी व्यवस्था करने वाला प्रमाणज्ञान सर्वज्ञकी साधना करनेमें समर्थ नहीं है। और, सर्वज्ञ नहीं है इस बातको सिद्ध करनेमें कोई अधिक हैरानी नहीं हो सकती, क्योंकि सभी लोग अपने ज्ञानमें प्रत्यक्षसे नजर कर रहे हैं कि सारे पुरुष हम लोगों जैसे ही साधारण बुद्धिवाले दिख रहे हैं और अब भी कितनी ही दूर जाकर देखलो, कोई पुरुष ऐसा न मिलेगा कि जिसको ज्ञान हम लोगोंके ज्ञानसे कुछ विलक्षण होता हो। इसी कारण सत्ताके साधक किसी भी प्रमाणसे सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं होती। अब रह गया शेष अभाव प्रमाण तो अभाव प्रमाणके द्वारा सर्वज्ञकी साधना करनेकी कोई पद्धति ही नहीं है। अभाव प्रमाणसे न किसीका सद्भाव सिद्ध किया जा सकता और न ऐसे पदार्थका अभाव सिद्ध किया जा सकता जो कि कोई था हो नहीं है ही नहीं, होगा ही नहीं। जो पदार्थ उपलभ्यमान हो सकता है उस ही पदार्थके सम्बन्धमें अभाव प्रमाणकी प्रमाणता बन सकती है। तो अभाव प्रमाणको लेनेका कोई प्रसंग ही नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अथवा अभाव प्रमाण लगावोगे तो स्पष्ट है कि सर्वज्ञका अभाव है, क्योंकि अनुपलब्धि होनेसे। सर्वज्ञ नहीं पाया जाता है, यही एक प्रबल प्रमाण है कि लोकमें किसी भी देशमें, किसी भी जगहमें सर्वज्ञ नहीं है।

मीमांसकाभिमत सर्वज्ञाभाव मन्तव्यका निराकरण—उक्त प्रकार मीमांसक सिद्धान्तने यहाँ सर्वज्ञके अभावका वर्णन किया है। लेकिन उन मीमांसकोंका यह समस्त कथन बिना ही परीक्षा किए हुए कहा गया है। क्योंकि सर्वज्ञके निराकरणसे पहिले साधक प्रमाणकी असम्भवता सुनिश्चित नहीं है जिससे कि शंकाकार मीमांसक प्रतिकूल बात सिद्ध कर सके। और, बाधक प्रमाणकी असम्भवतासे बढ़कर अथवा अधिक प्रत्यक्ष आदिककी प्रमाणतामें भी विश्वासका कारण और नहीं है याने प्रत्यक्ष विश्वासके योग्य है इसका भी कारण क्या है कि वहाँ बाधक प्रमाण नहीं बन रहा है, सो बाधक प्रमाणकी असम्भवता सर्वज्ञमें सिद्ध होती हुई यदि सर्वज्ञकी सत्ताको सिद्ध करे तो सभी जगह प्रत्यक्षमें अभावमें सम्यक अवलोकनमें, मिथ्या अवलोकनमें सर्वत्र बात तो यही अविशेष रूपसे है कि सिद्ध भी हो लेकिन अब तो सिद्ध होकर भी सत्ता को सिद्ध नहीं करता। सो सामान्यरूपसे सब ही जगह बाधक प्रमाणकी असम्भवताका निर्णय न होनेपर दर्शन प्रत्यक्ष अदर्शनका उल्लंघन नहीं कर सकता अर्थात् प्रत्यक्ष भी गैर प्रत्यक्षकी तरह बन जायगा। क्योंकि बाधक कारण न होनेपर भी सत्ताकी सिद्धि नहीं मानी जा रही। और यदि बाधक प्रमाण न होनेपर सत्ताको मान लिया जाय तो सर्वज्ञकी सिद्धिमें भी बाधक प्रमाण नहीं है। अतः सर्वज्ञकी सिद्धि माननी चाहिये।

सर्वज्ञनिराकरणके लिये निराकरणीयकी सत्ता माननेके ढङ्गपर विचार
अब यहाँ मीमांसक कहते हैं कि सर्वज्ञके निराकरणसे पहिले साधक प्रमाणकी असम्भवता सुनिश्चित् न भी हो लेकिन अपना प्रत्यक्ष या अन्य सर्वज्ञके प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञके साधक बन रहे हैं। यहाँ जो आक्षेप किया था कि सर्वज्ञका निराकरण तुम करने चले तो सर्वज्ञकी पहिले सत्ता सिद्ध करलो तब तो निराकरण बनेगा। किसी बातको हटाना है तो वह बात हो तभी तो हटाई जायगी। तो सर्वज्ञका साधकपना तो पहिले दिखाओ! इसपर मीमांसक कह रहे हैं कि सर्वज्ञके साधक तो अन्य सर्वज्ञके प्रत्यक्ष हैं अथवा उस हीका प्रत्यक्ष है और परोपदेशरूप हेतुसे उत्पन्न हुआ अनुमान सर्वज्ञका साधक है तथा इन्द्रियकी अपेक्षा न रखकर सत्य अशेष सूक्ष्म आदिक अर्थका प्रतिपादन करने वाले उसके वचन विशेषरूप लिङ्गसे उत्पन्न हुआ जो अनुमान है वह अनुमान सर्वज्ञका साधक है और फिर आगम विशेष जो कि सर्वज्ञपनेकी बात कहीं बीच-बीचमें कहता है वह सर्वज्ञका साधक है और फिर निराकरणके बाद तो किसका निराकरण किया गया है इस रूपसे तो सर्वज्ञ सिद्ध हो है। अतः सर्वज्ञका निराकरण कर देना युक्तिसंगत है। अब सिद्धान्ततः इस शंकाका समाधान करते हैं कि उक्त कथन केवल अपना मनोरथमात्र है। जो मनमें कल्पना उठी उसीको कह देना मात्र है, क्योंकि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वज्ञका निराकरण असम्भव है। सर्वज्ञकी सत्तामें बाधक कोई प्रमाण नहीं है।

सदुपलम्भक प्रमाणपञ्चककी निवृत्तिरूप बाधक प्रमाणसे सर्वज्ञाभाव की सिद्धिका शंकाकारका प्रयास—अब यहाँ मीमांसक कहते हैं कि सत्ताका सद्भाव सिद्ध करने वाले ५ प्रमाण हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, अर्थापत्ति और उपमान। ये पाँचों प्रमाण सर्वज्ञकी सिद्धिसे निवृत्त हैं अर्थात् पाँचों प्रमाण जब सर्वज्ञ की सिद्धिमें असमर्थ हैं तो इससे सिद्ध ही है कि सर्वज्ञकी सिद्धिमें बाधा है। सद्भाव सिद्ध करने वाले पाँचों प्रमाणोंकी प्रवृत्ति नहीं है सर्वज्ञकी सत्ताकी सिद्धि करनेमें। अतएव पाँचों प्रमाणोंकी निवृत्ति होना ही सर्वज्ञका बाधक है. क्योंकि ज्ञापक प्रमाण ये ५ हैं। छठा जो अभाव प्रमाण है वह तो ज्ञापक प्रमाणके अभावस्वरूप है। जहाँ पाँचों प्रमाण नहीं लग सके वहाँ अभाव प्रमाण लगता है। तो जब सत्ताको सिद्ध करने वाले पाँचोंके प्रमाण सर्वज्ञकी सिद्धिमें नहीं लग पाते तो उन पाँचों प्रमाणोंकी निवृत्ति होना ही सर्वज्ञका बाधक प्रमाण है।

सर्वज्ञज्ञापकानुपलब्धि हेतुकी असिद्धि—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारने जो यह कहा है कि सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि ज्ञापक प्रमाणका अनुपलम्भ है। ज्ञापक प्रमाण हैं ५, वे यहाँ लगते नहीं इस कारण सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं बनती। तो यह बतलाइये कि जो हेतु दिया है ज्ञापकानुपलम्भ, ज्ञापक प्रमाणका अनुपलम्भ होना, सो यह ज्ञापकानुपलम्भ स्वसम्बन्धी है या पर सम्बन्धी है? अर्थात् स्वयंको, शंकाकारको खुद सर्वज्ञकी अनुपलब्धि है यह हेतुका मतलब है या यह मतलब है कि दूसरोंको, सब जीवोंको सर्वज्ञके ज्ञानकी अनुपलब्धि है? यदि कहो कि स्वसंबंधी ज्ञापकानुपलम्भ सर्वज्ञका बाधक है तो दूसरेकी चित्तवृत्तियाँ भी तो आपको नजर नहीं आतीं, तब उनका भी अभाव बन जायगा। याने दूसरे जो मनुष्य हैं अथवा जैनी पञ्चेन्द्रिय पशु पक्षी हैं उनके चित्तमें क्या बात है? किस ढङ्गका भीतर परिणमन है यह तो आपको नहीं नजर आता। तो क्या स्वसम्बन्धी ज्ञापकानुपलम्भ होनेसे पर-चित्तवृत्तियोंका अभाव हो जायगा? तो आपका ज्ञापकानुपलम्भ है इस वजहसे सर्वज्ञका अभाव बन जाय यह तो युक्त नहीं है। यदि आपको अनुपलम्भ होनेसे सर्वज्ञका अभाव मान लिया जाता है तो दूसरोंकी चित्तवृत्तियोंका भी आपको अनुपलम्भ है तब दूसरे जीव भी न सत्ताको प्राप्त कर सकेंगे। यदि कहो कि सभीको सर्वज्ञके सम्बन्धमें ज्ञापकका अनुपलम्भ है अर्थात् सभीको सर्वज्ञके बारेमें न प्रत्यक्ष न अनुमान आदि ये कोई भी प्रमाण नहीं लगते, इससे सर्वज्ञका अभाव है तो यह कहना तो यों अयुक्त है कि आपने क्या यह निर्णय कर लिया कि दुनियामें जितने भी जीव हैं सब जीवोंको सर्वज्ञके बारेमें अभाव सिद्ध है? किसीको भी सर्वज्ञ विदित नहीं आता। इसका निर्णय तो नहीं हो सकता। कहां आप जानते हैं सबको? देखिये! स्वसम्बन्धी ज्ञापक प्रमाणका अनुपलम्भ यदि अभाव सिद्ध करे तो आपका प्रत्यक्ष भी इन दिखने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वाली चीजोंमें भी भले प्रकार नहीं है। बताओ भींटके भीतर क्या है ? समुद्रके अन्दर क्या है ? है तो कुछ, पर आपको कहाँ प्रत्यक्ष है ? तो प्रभाव बन जायगा क्या उनका और, सबके बारेमें आपका निर्णय नहीं हो सकता कि सभी जीवोंका अनुपलम्भ है । यदि आपने निर्णय कर लिया तो लो एक आप ही सर्वज्ञ बन बैठे, फिर निषेध ही क्यों करते ?

अनुमान, उपमान आदिसे भी सर्वज्ञाभावकी असिद्धि—सर्वज्ञका अभाव अनुमानसे भी नहीं कर सकते, क्योंकि सर्वज्ञ तो अत्यन्त परोक्ष पदार्थ है, उसमें ज्ञापक लिङ्गका अभाव सिद्ध नहीं कर सकते। यों नहीं कर सकते कि साधनका अभाव साध्य के अभावको तब सिद्ध करता है जब कहीं साध्य साधन उपलब्ध हो सकते हों और फिर अनुपलम्भ हो। जैसे धुवाँ, अग्नि आदिक चीजें हैं, अनेक बार प्रत्यक्षसे निश्चित किया है, फिर कहीं धुवाँ नहीं है तो वहाँ अनुमान बन जायगा ? यहाँ आग नहीं है तो धुवाँ कैसे होगा ? पर जो अत्यन्त परोक्ष बात है उसमें ज्ञापक लिङ्गकी बात नहीं बनती। और इसी प्रकार अर्थापत्ति और उपमान प्रमाणकी भी गति कहाँ हो सकती है, क्योंकि सर्वज्ञ अत्यन्त परोक्षभूत वस्तु है। सभी प्रमाताओंका जीवोंका प्रत्यक्ष आदिक नहीं है फिर कैसे सर्वसम्बन्धी ज्ञापकानुपलम्भ बने। आगमगम्य भी सर्वज्ञ नहीं है जिससे कि सर्वज्ञका निराकरण किया जाये। तो सर्वज्ञका साधक प्रमाणका अनुपलम्भ कैसे रहा ? जिस मीमांसकके यहाँ श्रुतिवाक्यका ज्ञान कार्य अर्थसे प्रमाण है उसका आगम सर्वज्ञकी सत्ताका प्रमाण कैसे हो सकता ? है मीमांसक भट्ट और प्रभाकर श्रुतिवाक्यका अर्थ स्वरूप नहीं मानते, भट्ट तो भावना मानते हैं और प्रभाकर नियोग मानते हैं। तब श्रुतिवाक्यका अर्थ स्वरूप सत्तामें नहीं बनता। सर्वज्ञ है अथवा नहीं है यह तो आगमका विषय ही नहीं है। उस आगमको कार्य अर्थमें नियोग अर्थमें प्रमाण माना है मीमांसकोंने

अभावप्रमाणसे भी सर्वज्ञाभाव व सर्वज्ञज्ञापकानुपलम्भकी असिद्धि— यदि सर्वज्ञके ज्ञापकका अनुपलम्भ, अभाव अभावप्रमाणसे सिद्ध किया जाता है तो वह भी यों युक्त नहीं कि समस्त पुरुष सम्बन्धी ज्ञापकानुपलम्भ तो निश्चित नहीं हो पाता। और भी देखिये ! अभाव प्रमाण तो वहाँ वस्तुका अभाव सिद्ध करता है जहाँ वस्तुके सद्भावको ग्रहण कर लिया हो, फिर उसके प्रतियोगीका स्मरण किया गया हो तब मानसिक जो नास्तित्वका ज्ञान होता है और वह इन्द्रियकी अपेक्षा न रखकर होता है अभाव प्रमाणके स्वरूपमें मीमांसकोंका ऐसा मंतव्य है। जैसे कि वे लोग वस्तुवोंके बारेमें घटित करते हैं तो, जैसे किसीने देखा कि इस कमरेमें घड़ा नहीं है तो कमरेका तो सद्भाव ग्रहण किया और उसके प्रतियोगी घड़ा उसका स्मरण किया। देखा कमरा, ख्याल किया घड़ेका और उस समय जो मनसे नास्तित्वका ज्ञान बन रहा है जो अभाव रूप ज्ञान इन्द्रियकी अपेक्षासे नहीं हो रहा बस वही तो अभाव प्रमाणका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विषय है। इस तरह जो अभाव प्रमाण मानते हैं उनके यहां सर्वज्ञके सम्बन्धमें अभाव तब बन सकेगा जब पहिले समस्त मनुष्योंका तो ज्ञान करलें और सर्वज्ञके ज्ञापकका स्मरण करलें। और, फिर मनमें जो नास्तिता सम्बन्धी अवगम बने तो अभाव मान लो। जैसे इस कमरेमें घड़ा नहीं है इस तरहकी नास्तिताके ज्ञानके लिए दो बातें हुई। कमरा वस्तुका सद्भाव ग्रहण किया और प्रतियोगी घड़ेका स्मरण किया। तब मानसिक ज्ञान हुआ कि घड़ा नहीं है इसी तरह पहिले सब मनुष्योंका ज्ञान हो जाय क्योंकि इन मनुष्योंमें हो तो यह सिद्ध कर रहे हैं कि कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता सो पहिले सब जीवोंका ज्ञान करलें फिर प्रतियोगी ज्ञापकानुपलम्भका स्मरण करले तब नास्तिता का जो मनमें विकल्प हो तब तो अभाव प्रमाण बने अन्यथा न बन सकेगा। सो समस्त मनुष्योंका ज्ञान साक्षात् इस शंकाकारको कहाँ हो रहा है न एक साथ हो रहा न क्रमसे हो रहा, और, किसी पुरुषके मनकी बातका ज्ञान तो यहाँ भी नहीं हो सकता। जो पुरुष सामने खड़ा है उस ही के चित्तकी बात पहिले बतावें सो भी नहीं फिर विश्वके समस्त जीवोंका ज्ञान करनेकी बात तो दूर ही रही, जैसे किसी भी समय कहीं पर एक जगह एक मनुष्यमें अगर सर्वज्ञके नास्तित्वका निश्चय कर लिया गया तो दूसरे मनुष्यमें भी सर्वज्ञके नास्तित्वका निश्चय है यह तो घटित नहीं किया जा सकता।

निराकरणीय सर्वज्ञकी किसी भी प्रमाणसे कल्पनाका अभाव—इन मीमांसकोंके यहाँ जैसे प्रत्यक्षसे समस्त प्राणियोंका बोध नहीं किया जा सकता इसी प्रकार अनुमान आदिक अन्य प्रमाणोंसे भी सर्व पुरुषोंका ग्रहण नहीं किया जा सकता, क्योंकि अनुमानमें चाहिये लिङ्ग, उपमानमें चाहिये सदृशता। अर्थापत्तिमें चाहिये अन्यथा भाव सो यहाँ नजर ही नहीं आता। फिर अन्य प्रमाणोंके समस्त जीवोंका, पुरुषोंका ग्रहण कैसे किया जा सकता ? और फिर समस्त पुरुषोंका ज्ञान होता है यह बात कैसे जाना स्वसम्बन्धी ज्ञानसे या पर सम्बन्धी ज्ञानसे ? यों विकल्प करके जो पहिले दूषण दे आये हैं वे सब दूषण यहाँ भी लागू होते हैं। अभाव प्रमाणके बारेमें स्पष्ट बात यह है कि जब पहिले कोई भी सर्वज्ञके ज्ञापककी उपलब्धि सिद्ध न हुई तो नास्तित्वका ज्ञान कैसे सही कहा जा सकता ? जब पहिले जिसका निराकरण करते हैं उसका स्मरण बने तब तो अभाव प्रमाण लागू होगा, सो सर्वज्ञके ज्ञापकका उपलम्भ पहिले किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं मान रहे हो तो अभाव भी नहीं कह सकते।

एकान्तवादके निराकरणकी अशक्यताकी आरेकाका समाधान—शायद मीमांसक यह कहे कि हम सर्वज्ञ नहीं मानते, किन्तु दूसरे लोग तो मानते हैं सो दूसरोंके माननेसे सिद्ध हुआ जो सर्वज्ञ है उस ही के बारेमें हम नास्तित्व सिद्ध कर रहे हैं। यह कहना यों सिद्ध नहीं कि बताओ दूसरोंने जो माना है वह प्रमाण सिद्ध है अथवा नहीं ? यदि प्रमाण सिद्ध है तो यह सभीको प्रमाण सिद्ध बन जाना चाहिए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और प्रमाण सिद्ध नहीं है तो असिद्धका निराकरण कैसे ? यहाँपर मीमांसक शंका करता है कि फिर आप अर्थात् स्याद्वादी लोग सर्वथा एकान्तका कैसे निराकरण कर सकते हैं ? यदि दूसरोंने माना है एकान्तवाद तो परोगमसे सिद्ध एकान्तवाद है वह प्रमाण सिद्ध है तो स्याद्वादियोंको भी प्रमाण सिद्ध मान लेना चाहिये और सिद्ध नहीं है तो जैन भी कैसे निषेध कर सकते हैं ? यह शका यों युक्तिसंगत नहीं है कि अनन्तधर्मात्मक पदार्थोंके अबाधित सिद्ध होनेपर एकान्तके बाधित होनेकी सिद्धिमें फिर क्या दोष है। और फिर साथ ही यह बात है कि स्याद्वादियोंके यहाँ यह प्रक्रिया नहीं है कि वस्तु सद्भाव ग्रहणकरके प्रतियोगीका स्मरण करके नास्तिकताज्ञान करना अभाव प्रमाण है यह प्रक्रिया नहीं है। तो फिर अनेकान्तके ज्ञात होनेपर एकान्तकी अनुपलब्धि स्वयं प्रसिद्ध हो जाती है। अनेकान्तकी विधि ही का नाम एकान्तका निषेध माना गया है सो जैसे कि अनेकान्तकी सिद्धिमें बताया गया है उस प्रकार सर्वदेशमें सर्वज्ञके ज्ञापकका अनुपलम्भ सिद्ध नहीं है जिससे कि सर्वत्र सर्वज्ञके प्रत्यक्षका निषेध किया जाय। याने सब जगह सर्वज्ञ नहीं है इसका ज्ञान हो जाय तभी तो निषेध किया जा सकता है। उस निषेधमें अभाव प्रमाण जैसी पद्धति नहीं चल सकती है कि वस्तुके सद्भावको ग्रहण करले फिर प्रतियोगीका स्मरण करे, तब जो मनमें नास्तित्वका ज्ञान होता है, वह अभाव प्रमाण है। तो इस तरह यदि प्रतियोगीका स्मरण किया तो लो स्मरणके ही रूपसे सर्वज्ञकी सिद्धि हो गयी, तो सर्वत्र ज्ञायकानुपलम्भ सिद्ध नहीं है इस प्रकार असिद्ध ज्ञापकानुपलम्भ सर्वज्ञका बाधक नहीं हो सकता। तब सर्वज्ञका साधक यह हेतु युक्त है सुनिश्चितासम्भवद् बाधक प्रमाणत्व याने बाधक प्रमाणकी असम्भवता सुनिश्चित होना यह हेतु सर्वज्ञके सद्भावका साधक है और तब यह अनुमान बिल्कुल युक्तिसंगत है कि सर्वज्ञ है क्योंकि बाधक प्रमाणकी असम्भवता सुनिश्चित है। देखिये ! प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंमें भी यह प्रमाण है ऐसे विश्वासका कारण यही पड़ता है कि वहाँ बाधक प्रमाणकी असम्भवता है।

प्रमाणके प्रामाण्यकी परखमें बाधकासंभवत्वका प्रबल विश्वासनिबंधनत्व बाधक प्रमाण न होना यह सबसे प्रबल प्रमाणकी प्रमाणताके विश्वासका कारण है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ विश्वासका कारण नहीं बन सकता। तो प्रमाणमें प्रमाणता है ऐसा विश्वास कर सकनेका कारण बाधक प्रमाणकी असम्भवता है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। जैसे कि सम्वादकपना, प्रत्यक्ष प्रमाणमें प्रमाणता वास्तविककी है सम्वादक होनेसे। इस प्रकार बनाया गया सम्वादकपना हेतु कहीं संदिग्ध बन जाता है। लग रहा हो सम्वादक जैसा और जाना जा रहा तो झूटे विपरीत ज्ञानको। जैसे पड़ी तो है सीप, जानी गई चाँदी तो चाँदीके ज्ञान करते समय उस पुरुषको कहाँ विवाद हो रहा है ? वह तो सत्य ही समझता है। वहाँ सम्वादकता ही है। तो देखो ! सम्वादकता तो हुई और प्रमाणभूत न रहा। तो विश्वासका कारण तो बाधककी असम्भवता ही सिद्ध होती है। कोई लोग कहते हैं कि प्रवृत्ति सामर्थ्यसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंमें प्रमाणता जान ली जाती है वह प्रवृत्ति सामर्थ्य भी कैसे सिद्ध हो ? वह तो उत्तर कालकी बात है। निर्दोष कारणसे जन्य है, इसे कोई प्रमाणकी प्रमाणताका उपाय समझता है सो निर्दोष कारणमें ही विवाद है। कारणमें निर्दोषता है कि नहीं, फिर प्रमाणता क्या जानेंगे ? सो बाधक प्रमाणकी असम्भवतासे बढ़कर अन्य कुछ भी विश्वासका दृढ़ कारण नहीं है। और भी देखिये ! हैं भी ये तीन बातें, प्रमाणताके साधक सम्वादकपना होना प्रवृत्तिका सामर्थ्य होना, निर्दोष कारणोंसे उत्पन्न होना सही है प्रमाणताके विश्वासके कारण बनते हैं सो ये तीन बाते बाधक प्रमाणका असम्भवपना जहाँ है वहाँ अवश्य ही होती हैं। इन कारणोंके होनेपर भी जो विश्वासकी प्रतीति हो रही है वह नियमतः तो बाधक प्रमाणके असम्भवपनेके कारण हो रही है। इसके लिये प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण उदाहरणरूप हैं। जैसे प्रत्यक्ष प्रमाणवादी और प्रतिवादी दोनोंके यहाँ प्रसिद्ध है, साधन भी पूर्णरूपसे पाया जाना दोनोंको अभिमत है और साध्य भी पूर्णरूपसे पाया जाना वादी प्रतिवादी दोनोंको इष्ट है।

किसीके सद्भावकी सिद्धिमें बाधक प्रमाणकी असंभवता होनेसे सत्ता की नियमतः सिद्धि—यहाँ कोई शंका करता है कि बाधक प्रमाणकी असम्भवताका सुनिश्चय भी हो और वह अविद्यमान भी रहे पदार्थ जिसके सम्बन्धमें सिद्धिकी जा रही है तो ऐसा होनेके कारण तो साधन संदिग्ध विपक्ष व्यावृत्तिक हो गया अर्थात् इसी साधकका विपक्षमें भी पाया जाना सम्भव होनेसे यह संदिग्ध अनेकान्तिक दोषसे दूषित हो गया। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना यों युक्त नहीं है कि विपक्षमें बाधक प्रमाणका सद्भाव है, क्योंकि जो असत् है उसमें बाधक प्रमाणकी असंभवता सुनिश्चित नहीं है। रेतमें जल समझ जाना यह तो है बाधक प्रमाणके सम्भव वाला इसमें बाधक प्रमाण होता है तब वह मिथ्या सिद्ध हो जाता है। और मेरुकी चोटी पर लड्डू आदिक हैं, कि बहुत ऊँचे पर्वतपर लड्डू आदिक हैं ऐसा कहनेमें बाधककी असम्भवता संदिग्ध है। इस दृष्टान्तमें जो मेरूपर लड्डूका रखा जाना बताया है यो यह न्याय शास्त्रमें वादी प्रतिवादीके प्रसंगमें दिया हुआ उदाहरण है। जैन सिद्धान्तके अनुसार मेरूपर्वतकी चोटीके ऊपर एक बालके अन्तरके ही बाद ऋजु नामक प्रथम कल्पका विधान है। वहाँ मोदक कैसे ठहर सकता सो यहाँ बाधक प्रमाण संभव ही है। फिर भी यह दृष्टान्त साधारण रूपसे है सो इस बातपर दृष्टि नहीं देना। मेरूपर्वतके दृष्टान्तके मायने यहाँ यह है कि बहुत ऊँचे पर्वतपर जहाँ जाकर देखा नहीं जा सकता वहां कोई कहे कि उस पर्वतपर लड्डू रखा है। कुछ चीज रखी है तो इसमें बाधक प्रमाण सम्भव है या नहीं ? देखिये ! यहाँ साधारणतया यह उत्तर हो सकता है कि सम्भव भी है नहीं भी है। रखा भी हो, न रखा भी हो क्या पता करें। तब यहाँ बाधक प्रमाणकी असम्भवता दोनों ही जगह मेरूमूर्धापर मोदकादि हैं व नहीं हैं दोनों साध्योंमें सुनिश्चित होना सम्भव हो गया ना, और सर्वज्ञ है इसमें बाधक प्रमाण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

असम्भव है। सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करनेके प्रसंगमें बाधक प्रमाणकी असम्भवताका पूर्णरूपसे निश्चय है। यों प्रकृत सर्वज्ञमें सिद्ध हुआ भी साधन अर्थात् बाधक प्रमाणकी असम्भवता सुनिश्चित है। यह साधन यदि सत्ताको सिद्ध न करे तब तो प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षसे बढ़कर कुछ नहीं है यह बात बने, अविश्वास रहनेसे स्वप्न आदिकके भ्रमोंकी तरह। लेकिन सर्वज्ञकी सिद्धिमें दिया हुआ यह हेतु कि बाधक प्रमाणकी असम्भवता का सुनिश्चय है सर्वज्ञकी सत्ताको सिद्ध कर रहा है। तब वहाँ प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षकी भाँति है, यह कहनेका कहाँ अवसर है ? तो प्रत्यक्षमें बाधक प्रमाणकी असम्भवता सुनिश्चित है, यदि प्रत्यक्षमें बाधक प्रमाणकी असम्भवताका निश्चय न हो तब सभी प्रत्यक्षाभासोंमें यह बात समान बन गयी तो अब निर्णय कुछ हो ही न सकेगा।

सर्वज्ञकी सत्ताके साधक प्रमाणके निश्चयका और बाधक प्रमाणके न होनेका दृढतम निर्णय—यहाँ मीमांसक आशंका करता है कि देखो सर्वज्ञमें साधक प्रमाण भी सम्भव हो गया, बाधक प्रमाण भी सम्भव हो गया, तब फिर संशय बनता है सो संशय ही बना रहने दो संशयका लाभ अनिष्ट पक्षको हो ही जाता है। सो यों सर्वज्ञमें संशय ही रहा आने दो यह कहना अयुक्त है क्योंकि सर्वज्ञके साधक और बाधक प्रमाणका निर्णय है बराबर, सो बाधक प्रमाणके निर्णय होनेसे सद्भावमें विवाद नहीं है और बाधकका निर्णय होनेसे अभावमें भी विवाद नहीं है, अर्थात् जहाँ भी बाधक प्रमाणका निर्णय हो जाता है वहाँ अभाव है, सही नहीं है वह साधक बाधकका इस सम्वादमें भी निर्णय रहता है। यदि निर्णय न हो तो शंका की जा सकती है, याने साधक प्रमाण, बाधक प्रमाण इन दो का निर्णय न हो, अनिर्णय रहे तो सत्ता और असत्तामें संदेह बने, किन्तु साधक बाधक प्रमाणके निर्णय होनेसे सद्भाव और असद्भावमें अनिर्णय नहीं रहता। साधकके निर्णयसे तो उसकी सत्तामें विवाद नहीं रहता और बाधकके निर्णयसे असत्त में विवाद नहीं रहता। यहाँ सर्वज्ञकी सत्ताके साधकका निर्णय है असत्ताके बाधकका निर्णय है। अतएव सर्वज्ञके सम्बन्धमें संशय रहे आनेकी कोई गुञ्जाइश नहीं है। कोई कहे कि सर्वज्ञके सम्बन्धमें दोनोंका ही निर्णय रहा आये सत्ता भी रहे और असत्ता भी रहे सो ऐसे उभयका निर्णय कहीं भी सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि एक वस्तुमें सत्ता असत्ता दोनोंका विरोध है। जैसे कि जहाँ साधकका अभाव है वहाँ बाधकका अभाव नहीं है बाधकका सद्भाव है तथा जहाँ बाधकका अभाव है वहाँ साधकका अभाव नहीं है किन्तु साधकका सद्भाव ही है। तो जैसे एक वस्तुमें साधक और बाधक दोनोंका अभाव नहीं बन सकता इसी प्रकार एक वस्तुमें सत्ता और असत्ता दोनोंका अभाव नहीं बन सकता। साधकके अनिर्णयसे सत्तामें शंका हो जाय और बाधकके अनिर्णयसे असत्तामें शंका हो जाय यह तो विद्वानोंके लिये सुन्याय है। पर यहाँ देखिये कि सर्वज्ञकी सिद्धि करनेमें जो हेतु दिया है कि बाधक प्रमाणकी असम्भवताका यहाँ निश्चय है उसका है पूर्णतया निर्णय सो संसारी जीवोंके प्रभुमें बाधक प्रमाणकी असम्भवताका सुनिश्चय होना सत्ताका साधक है। सो सत्ता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का साधक सिद्ध होता हुआ यह हेतु साधक प्रमाणकी असम्भवताके निश्चयको हटा ही देता है अर्थात् अब सर्वज्ञकी सत्तामे बाधक प्रमाण असम्भव है तो उसका अर्थ यह हुआ कि साधक प्रमाण सम्भव है। बाधक प्रमाणकी असम्भवता और साधक प्रमाणकी असम्भवता दोनोंमें विरोध है। जहां बाधक प्रमाणकी असम्भवता सुनिश्चित् है वहाँ साधक प्रमाणकी असम्भवता सुनिश्चित होना घटित नहीं होता। बाधक और साधक इन दोनोंमें परस्पर विरोध है। इस प्रकार साधक प्रमाणकी असम्भवताका सुनिश्चय होना सर्वज्ञमें सिद्ध नहीं होता, जिससे कि बाधक प्रमाणकी असम्भवताका सुनिश्चय होना निवृत्त होना अर्थात् साधक प्रमाण सम्भव है और बाधक प्रमाण असम्भव है सर्वज्ञकी सिद्धिमें। तब हेतुके निर्दोष हो जानेसे यह सिद्ध हुआ कि संसारी जीवोंका प्रभु सर्वज्ञ ही है।

आत्मामें ज्ञानस्वभावताकी सिद्धि और अज्ञत्वस्वभावका प्रतिषेध—अब अन्तः दृष्टिसे और अन्तयुक्तिसे भी विचारिये! जो ज्ञानस्वभाव पदार्थ है उसके लिए कुछ भी पदार्थ अगोचर नहीं रहता। ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जिसका यह ज्ञानी पार नहीं करता अर्थात् जानता नहीं है। यदि सर्वज्ञ किसी पदार्थको जाने तो इसके मायने यह है कि उस ज्ञाता परम पुरुषमें अज्ञत्व स्वभाव आ गया। सो ज्ञत्व स्वभाव प्रभुमें अज्ञत्वस्वभावका निषेध है ही। जो ज्ञानस्वभावी है उसमें अज्ञानस्वभाव कैसे ठहर सकता है? कोई यहाँ शंका करता है कि सर्वज्ञमें अज्ञत्व स्वभावान्तरका प्रतिषेध कैसे सिद्ध है जिससे कि यह सर्वज्ञ ज्ञानस्वभावी बने और फिर उसके सब पदार्थ विषयभूत हो जायें और इस कारणसे फिर वह सब पदार्थोंको जान ही जावे! इस शंकाका उत्तर देते हैं कि देखिये! जो यह शंका कर रहे हैं मीमांसक कि प्रभुमें अज्ञत्वस्वभावान्तरका निषेध कैसे सिद्ध है? सो उन्हींके आगममें यह बात सिद्ध होती हुई मिलती है। यदि प्रभुमें ज्ञानस्वभाव न हो तो यह कथन कैसे सिद्ध होगा जैसे कि श्रुतिवाक्यमें कहा है कि श्रुतिवाक्यके बलसे वेदाभ्याससे भूत भविष्य आदिक समस्त पदार्थोंका ज्ञान होता है। ज्ञान करने वाले आत्मामें ज्ञानस्वभाव न हो तो वेदवाक्यके आलम्बनसे भी सब पदार्थोंके जाननेकी बात नहीं आ सकती। इससे सिद्ध है कि आत्मा ज्ञानस्वभावी है, उसमें अज्ञत्व स्वभावका निषेध है। सो देखिये कि कहाँ तो ये मीमांसक ऐसा विश्वास स्वयं कर रहे हैं कि वेद भूत, वर्तमान, भविष्य अतरित दूरवर्ती ऐसे समस्त पदार्थोंका पुरुष विशेषोंका ज्ञान करानेके लिए समर्थ हैं, कहाँ तो यह विश्वास कर रहे हैं और अब समस्त अर्थोंके जाननेका स्वभाव आत्मामें है, इसपर विश्वास नहीं कर रहे, तो उसे कैसे स्वस्थ अर्थात् ठिकानेके दिमाग वाला कहा जाय? यदि आत्मा ज्ञानस्वभाव नहीं है तो किसी भी प्रकार यह वेद किसी पुरुष विशेषको भूत, भविष्य, वर्तमानके पदार्थोंका ज्ञान करा देनेमें समर्थ नहीं हो सकता। इससे मानना होगा कि आत्मा ज्ञानस्वभावी है और वह ज्ञान मीमांसकके यहाँ आत्मासे सर्वथा भिन्न है ही नहीं क्योंकि मीमांसक सिद्धान्तमें ज्ञानको आत्मासे कथंचित् अभिन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

माना है, अन्यथा याने ज्ञानको आत्मासे सर्वथा भिन्न मान लिया जाय तो इसमें नैयायिक मतका प्रसंग आ जायगा। इससे पुरुष विशेष किसी भी विषयमें अज्ञ रहनेके स्वभाव वाला नहीं है, क्योंकि सभी विषयोंमें वेदसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती मानी है और विकल्प ज्ञानकी व्याप्ति ज्ञानकी याने सर्वत्र साध्य साधनके ज्ञानकी तो उत्पत्ति होती ही है। देखिये ! वेदाभ्यासके बलसे भूत भविष्य आदिक अर्थका ज्ञान कर लिया पुरुषने तो इसमें पुरुषका ज्ञानस्वभाव सिद्ध हुआ ना। पत्थर लकड़ी आदिक तो वेदको छुवे हुए वर्षों तक भी रखे रहें उनको तो ज्ञान नहीं करा पाता यह वेदशास्त्र। तो पुरुष विशेषोंको जो भूत, भविष्य, वर्तमान समस्त अर्थोंका ज्ञान करा देती है श्रुति, तो इससे सिद्ध है कि यह आत्मा ज्ञानस्वभावी है। और, व्याप्तिज्ञानमें सामान्यतया समस्त साध्य साधनोंका ज्ञान कर लिया जाता है। जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ अग्नि है, व्याप्ति ज्ञानमें जो ऐसा बोध बना उसमें कहींका धूम छोड़ा गया क्या ? समस्त धूमोंकी बात है। और समस्त धूमके होनेपर अग्निके होनेकी बात इस व्याप्ति ज्ञानमें बताई गई है उससे सिद्ध है ना, कि आत्मामें सबका ज्ञान करनेका स्वभाव है। यदि व्याप्ति ज्ञानकी उत्पत्ति न हो, व्याप्तिज्ञान न बने तो विधि और प्रतिषेधके विचार भी घटित नहीं हो सकते, अनुमान प्रमाण भी नहीं बन सकता। तो अनुमानकी प्रमाणताके लिए व्याप्तिका ज्ञान होना आवश्यक है और व्याप्तिके ज्ञानमें विश्वके समस्त साधनोंका ज्ञान किया गया है। तो इससे सिद्ध है कि इस आत्मामें, पुरुष विशेषमें समस्त अर्थोंके जाननेको स्वभाव पड़ा है।

सहज ज्ञानस्वभावी होनेसे आत्मामें ज्ञानस्वभावता और किसी परम पुरुषकी सर्वज्ञताकी सिद्धि—और भी देखिये ! इसका तो सभी कोई अनुभव करते हैं कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इससे सिद्ध है कि परपदार्थोंको जाननेका स्वभाव आत्मामें सहज बसा है। अब कुछ ज्ञानस्वभावमें कल्पनायें करके अवधि डालें कि यहाँ तक ही जाननेका स्वभाव है तो इसका कारण क्या ? यह अवधि बन नहीं सकती। जाननेका स्वभाव है तो है ही जाननेका स्वभाव ! जाना जाता है सद्भूत वस्तु। तो यावन्मात्र सद्भूत पदार्थ हैं, उन सबको जाननेका स्वभाव आत्मामें पड़ा हुआ है। यह बात निमित्त नैमित्तिक भावकी है कि विषय कषायके जब आवरण हैं तब ज्ञानस्वभाव होनेपर भी यह जीव सबको जान नहीं पाता। जब भी अवसर होता है, आवरणका क्षयोपशम होता है तो यह जीव अज्ञानमें स्वयं ही बढ़ जाता है। और जब आवरणोंका पूर्णरूपसे क्षय हो जाता है तब वह ज्ञानस्वभाव परम पुरुष पूर्ण ज्ञानी हो जाता है। उस समय समस्त पदार्थ भूत, भविष्य, वर्तमान सूक्ष्म स्थूल सब ही उसके ज्ञानमें ज्ञात होते हैं। अतः सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

ज्ञस्वभाव आत्माके अज्ञान होनेका कारण—यहाँ मीमांसक यह शंका करता है कि फिर इस तरह किसी पुरुषके किसी विषयमें अज्ञान कैसे रहेगा ? जबकि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्माको ज्ञानस्वभावी मान लिया तो आत्मा जानता ही रहे सब कुछ। वह किसी विषयमें अज्ञान क्यों रखता है ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि पुरुषोंका जो अज्ञान रहता है, मोहका उदय रहता है उसका कारण है किसी सम्बन्ध्यन्तरका याने अन्य पदार्थोंका सम्बन्ध। यह आत्मा चेतन है फिर भी इस चेतन आत्मामें कर्मोंका सम्बन्ध हो तो उन कर्मोंमें ज्ञानावरण नामक कर्मके उदयसे यह अज्ञान होता है। जैसे कि कोई पुरुष विवेकी है सावधान है। लेकिन यदि वह मदिरापान करले तो उसे बेहोशी आती है। इसी प्रकार यह आत्मा चेतन है, ज्ञानस्वभावी है, फिर भी इसके साथ जो कर्म लगे हैं उनके उदयमें यह जीव अज्ञानी और अन्यथा प्रवृत्ति करने वाला हो जाता है। यदि मीमांसक पूछे कि यह भी बात कैसे सम्भव है ? वह ज्ञानावरण कर्म कैसे सिद्ध होता है? तो उसकी सिद्धि अनुमान प्रयोगसे की जाती है। सो सुनो ! यह विवादापन्न जीवका अज्ञान आदिकका उदय अन्य सम्बन्धियोंके कारणसे होता है, मोहका उदय होनेसे। जैसे कि मदिराके कारणसे बेहोशी हो जाती है, इस अनुमानसे सिद्ध होता है कि इस जीवके साथ कोई अन्य पदार्थ उपाधि लगी हुई है और वह उपाधि है ज्ञानावरण आदिक कर्म।

जीव विभाव और कर्मका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध—वह जीव तो अमूर्त है, ज्ञानानन्द स्वभाव है किन्तु ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि इस जीवमें विभाव परिणाम हुआ तो उसका निमित्त पाकर लोकमें भरे हुए कार्माण वर्गणाके स्कंध कर्मरूप बन जाते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि अनादिकालसे इस जीवके साथ अनेक कार्माण वर्गणायें स्वभावतः ही लगी हुई हैं। अर्थात् कार्माण वर्गणाओंके स्वभावसे ही वह उपचित है, इसे विश्रसोपचय कहते है। एक जीवके साथ जो कर्म बँधे हैं सो तो बँधे है, उनका उदय आयगा पर अनेक कार्माण वर्गणायें इस जीवके साथ स्वभावतः ही संचित हैं कि जीव परिणाम बिगड़े कि उसी समय वह कार्माण वर्गणा कर्मरूप बन जायगी। जो पदार्थ अपने आप सहज जिस स्वभाव रूप है उसके विरुद्ध यदि कोई बात पायी जाती है तो समझना चाहिए कि इस कारण किसी अन्यका सम्बन्ध है। जैसे जलका स्वभाव मान लो ठंडा है, तो ठंडेपनसे विरुद्ध गर्मी जलमें आये तो समझते हैं ना, कि उसका कोई कारण अन्य पदार्थका ही तो सम्बन्ध है। धूपमें पानी रखा तो सूर्यका निमित्त है। आगपर बटलोही चढ़ा दी पानी गर्म हो गया, तो उस गर्मीका आग निमित्त है। तो जलमें ठंडेपनके विरुद्ध परिणमन आ रहा है वह उपाधिके निमित्तसे है, इसी प्रकार आत्माका स्वभाव ज्ञान है। वह जानता रहे तो जानते रहनेके स्वभावसे विरुद्ध अर्थात् कम जान पाये उसमें मोहका उदय आ जाय, ऐसी जो अटकें आती हैं, राग द्वेषभाव उत्पन्न होते हैं वे सब जीवमें अपने ही स्वभावमात्रसे नहीं होते। यद्यपि वे हैं जीवके परिणमन, लेकिन स्वरूपके प्रतिकूल जो परिणमन होगा वह किसी अन्य उपाधिका निमित्त पाकर ही होगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपाधि औपाधिक भाव – इस संसारी जीवके साथ कर्मबद्ध हैं। वे ८ प्रकार के कर्म हैं – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये कर्म हैं। इनकी सिद्धि कार्य देखकर होती है। ज्ञानावरण जीवके ज्ञानके प्रकट न होने देनेमें निमित्त है, तब हम जीवोंमें यह निरखते हैं कि किसीका कितना ही ज्ञान किसी अन्यका और कम ज्ञान तो ज्ञानपर जो यह पर्दा पड़ा है, ज्ञानका जो विकास नहीं हो रहा है इसमें कोई पदार्थ निमित्त है और वह है ज्ञानावरण कर्म। दर्शनावरण कर्म —जीवनका स्वभाव सन्मात्र प्रतिभास करनेका है, देखनहार रहनेका है, लेकिन इसके इस दर्शन गुणपर जो आवरण है उसका निमित्त पाकर यह सही रूपमें प्रकट नहीं हो पाता है इसका कारण है दर्शनावरण कर्म। जीव स्वरूपत: आनन्दमय है, इसके स्वरूपमें देखो, उसमें क्लेशका कोई अवसर ही नहीं है। लेकिन यह जीव आनन्दमय विकासमें तो नहीं है। उस आनन्द स्वभावके प्रतिकूल जो बात बीत रही है जीवपर वह किसी अन्य उपाधिके कारणसे है। उसका निमित्त है वेदनीय कर्म। यह सामान्य नियम है कि किसी वस्तुमें विचित्र परिणमन यदि चलता है तो उसका कारण किसी अन्य पदार्थका सम्बन्ध है। यदि अन्य पदार्थका सम्बन्ध न हो तो वस्तुका एक समान ही परिणमन होगा। ये जीवमें विचित्र परिणमन देखे जा रहे हैं। यदि ये नाना परिणमन जीवके स्वभावसे ही उठते हों तब तो एक रूप होना चाहिये था, अथवा स्वभावसे ही यदि रागद्वेषादिक विचित्र परिणमन उठते हों, तब इसका कभी विकास ही न हो सकेगा। जो बात स्वस्वभावसे विकसित होती है उसके स्वभावका कोई कारण नहीं है। औपाधिक भावोंका विनाश तो उपाधिके अभावमें हो ही जाता है, लेकिन स्वभावसे ही यदि विकार उठने लगें तो उन विकारोंके विनाशका कोई उपाय न हो सकेगा। फिर मोक्ष क्या, मोक्ष मार्ग क्या ? धर्म करनेकी आवश्यकता भी क्या ? सब धर्म व्यवहारका लोप हो जायगा। जीवमें जो ये विकार हो रहे हैं, अज्ञान हो रहा है वह किसी अन्य उपाधिके सम्बन्धसे हो रहा है।

ज्ञानावरणकर्मका अभाव होनेपर सर्वज्ञत्वके अभ्युदयकी अनिवार्यता– अब देखिये ! ज्ञानावरण कर्मोंका अभाव होनेपर समस्तरूपसे निर्मोह हो जाता है वह परम पुरुष, और तब भूत, भविष्य, वर्तमानके पदार्थोंको जानता देखता है। पदार्थोंके जाननेमें निकटता और दूरी कारण नहीं है, निकटता और दूरी पदार्थोंके जाननेमें अकिञ्चित्कर है। यहाँ पदार्थोंका ज्ञान होता है ज्ञानावरणका क्षयोपशम होनेसे। और, जहाँ पूर्णतया ज्ञानावरणका क्षय हो जाता है वहाँ पूर्णतया सर्वज्ञता प्रकट हो जाती है। अब यहाँ कोई शंका करता है कि ज्ञानावरण आदिक अन्य उपाधिके अभाव होनेपर समस्त रूपोंसे निर्मोह कैसे हो जाता है ? जिससे कि फिर भी समस्त भूत, भविष्य वर्तमानके अनन्त पदार्थ अनन्त पर्यायात्मक जीव तत्त्वको, अन्य समस्त तत्त्वों का साक्षात् करके अर्थात् जानले, इस शंकाका पृष्ठव्य मर्म यह है कि ज्ञानावरण आदिक कर्म दूर हो जाते हैं तो कौन सी वह पद्धति है कि यह जीव समस्त रूपोंसे व्यामोह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहित हो जाता है इस शंकापर उत्तर देते हैं कि देखिये ! ज बात जिसके होनेपर होती है वह उसके अभावमें होती ही नहीं है । जैसे अग्निके होनेपर ही धूम होता है, तो अग्निके अभाव होनेपर धूम हो ही नहीं सकता । तो इसी तरह यहाँ भी परखिये कि अन्य उपाधिके होनेपर ही आत्मामें व्यामोह होता है । इस कारण अन्य उपाधिके अभाव होनेपर व्यामोह नहीं होता, यह बात पूर्णतया निश्चित है ।

निकटता और दूरीमें ज्ञानाज्ञानकारणताका अभाव—अब यहाँ मीमांसक शंका करता है कि जो निर्मोह हो गए हैं ऐसे भी पुरुष सर्वात्मकरूपसे भी देखें तो देखें परन्तु निकट देश और निकट कालकी ही बातको देख सकेंगे, दूरकी बात न जान सकेंगे, अर्थात् निर्मोह होनेपर यह अतिशय तो मान लीजिए कि वस्तुको पूर्णरूपसे जान सकते हैं देख सकते हैं, लेकिन वे वर्तमानकी वस्तुको ही जानेंगे, निकट देशकी वस्तुको ही जानेंगे, बहुत दूर देशकी बात अथवा अथवा भूत भविष्यकी बातोंको निर्मोह पुरुष भी न जान सकेंगे । उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना अयुक्त है क्योंकि ज्ञानका कारण निकटता नहीं है और अज्ञानका कारण दूरी नहीं है । यह बात नहीं है कि पदार्थ निकटमें हो तो वह ज्ञानका कारण बन जाय और पदार्थ दूर देशमें हो तो वह अज्ञानका कारण बन जाय । क्योंकि देखा जाता है कि निकटता होनेपर भी ज्ञान नहीं होता और कभी दूरी होनेपर भी ज्ञान हो जाता है । इसके लिए अधिक दूर क्या उदाहरण खोजना, यहीं देख लीजिए कि नेत्रकी पुतलीपर अंजन लगा दिया जाय तो देखो अंजन आँखसे कितना निकट है, निकट भी क्या, आँखकी पुतलीपर ही अंजन लगा हुआ है तो इतना निकट होनेपर भी अंजनको यह नेत्र नहीं जान सकता है । इस तरह सिद्ध है कि निकटमें पदार्थोंका रहना ज्ञानका कारण नहीं है । दूर देशकी भी बात देख लीजिए चन्द्र अथवा सूर्य कितना दूर रहते हैं, किन्तु उनका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है । इससे सिद्ध है कि पदार्थोंका निकट रहना ज्ञानका कारण नहीं, और पदार्थंका दूर रहना अज्ञानका कारण नहीं किन्तु ज्ञानावरणका उदय होना अज्ञानका कारण है और ज्ञानावरणका क्षयोपशम क्षय होना ज्ञानका कारण है ।

योग्यताके ही ज्ञानकारणपना—यदि कहो कि जहाँ कहीं ऐसा अन्तर तका जा रहा है कि पदार्थोंके निकट होनेपर भी पदार्थंका ज्ञान नहीं तो होता और पदार्थके दूर होनेपर भी पदार्थंका ज्ञान होता देखा जारहा है तो उसमें योग्यताका सद्भाव और योग्यताका अभाव कारण है । उत्तरमें कहते हैं कि बात तुम्हारी बिल्कुल ठीक है और इससे यह ही सिद्ध हुआ कि ज्ञानका कारण योग्यता ही है, पर यह जानते हो कि योग्यता क्या है? ज्ञानावरण विशेषका अभाव होना इस ही नाम योग्यता है, निकटता और दूरी ये ज्ञानके लिए अकिञ्चित्कर हैं, क्योंकि निकटता न होनेपर भी अज्ञान और दूरी होनेपर भी ज्ञान देखे जा रहे हैं इससे निकटता औरदूरी ज्ञानका व अज्ञानका कारण नहीं है, योग्यता ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण है। और वह योग्यता है व्यामोहका दूर होना, अर्थात् ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मका क्षयोपशम होना अथवा क्षय होना। यदि एक देशरूपसे ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मोंका क्षयोपशम है तो पदार्थका एक देश रूपसे परिज्ञान होता है और यदि समस्त रूपोंसे ज्ञानावरण कर्मका विनाश होता है तो पूर्णरूपसे सबको जानने वाला ज्ञान विकसित होता है। इसने ज्ञानके होनेमें योग्यता कारण है, यह बात व्यवस्थित है, पर निकटता या दूरी कारण नहीं है। तो जब इस ज्ञानस्वभावी चेतन परम पुरुषके समस्तरूपसे व्यामोह दूर होता है तो पूर्ण वीतराग होकर यह आत्मा समस्त विश्वको जानता देखता है। जब यह ज्ञानस्वभाव है तब ज्ञेय पदार्थके सम्बन्धमें यह प्रश्न कैसे होगा ? ज्ञानके आवरण करने वाले कर्म जब न रहे तो यह प्रश्न रह ही नहीं सकता। जैसे दाहक अग्नि और उसे दाह्य ईन्धन मिले तो उसका दाहक कैसे न बनेगा ? अग्निको ईन्धन मिल जाय तो वह ईन्धनका जलाने वाला कैसे न होगा ? हाँ यदि प्रतिबन्ध करने वाले मणि मन्त्र आदिक हो तो अग्नि न जलाये। जब प्रतिबन्धक मणि मंत्र भी न रहें और दाह्य उपस्थित है तो अग्नि ईन्धनको क्यों न जलायेगी ? इसी तरह जब ज्ञानावरण आदिक कर्म दूर हो गए और ज्ञेय सब हैं ही तो यह ज्ञानस्वभावी परम पुरुष उन सबका ज्ञाता कैसे न बन जायगा ?

सर्वज्ञ ज्ञानकी अक्षानपेक्षता—इस जीवके साथ अनादि कालसे ज्ञानावरण आदिक आठ कर्मोंके बंधकी परम्परा चली आरही है। जब सुयोग प्राप्त होता है, कुछ कर्मोंका क्षयोपशम होता है, कुछ परिणामोंमें विशुद्धि जगती है, कर्मोंका क्षयोपशम विशेष होता है तो उस क्षयोपशम लब्धिके कारण विशुद्ध लब्धि भी बनती है और फिर इसे तत्त्वग्रहणकी सामर्थ्य जगती है। तत्त्वावधारणके प्रसादसे परिणामोंमें अतीव निर्मलता होती है, सम्यक्त्व जगता है। वस्तुस्वरूपकी स्वच्छ दृष्टि बननेसे निज स्वरूपके अवलम्बनका दृढ़तम प्रयत्न होता है। यह ही है सहज कारण परमात्म तत्त्व इस सहज ज्ञानानन्द स्वरूपके अवलम्बनके प्रसादसे शेष कर्मोंका भी ध्वंस होने लगता है। जब ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय, अंतराय, इन चार घातिया कर्मोंका क्षय हो जाता है। तब यह सकल परमात्मा होता है। उस सकल परमात्माके ज्ञान परिणतिकी इन्द्रियोंकी अपेक्षा नहीं होती। इसको संक्षिप्तमें यदि कारण परम्परा बतायी जाय तो तीन बातें कह सकते हैं कि प्रतिबन्धक कर्मोंका अभाव होना, जिसके प्रसादसे जीव समस्तरूपसे वीतराग बनता है जिस कारणसे समस्त विश्वको जाननेकी सामर्थ्य उत्पन्न होती है। अब इस सर्वज्ञके ज्ञानको इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं पड़ती, क्योंकि वे अपने सहज स्वरूपकी बारबार अभ्यास भावनासे स्वसंस्कृत हो गए हैं। जैसे कि अंजन आदिकसे सम्हारी हुई आँखको प्रकाशकी अपेक्षा नहीं पड़ती है, तो जिन प्रभुको ज्ञानमें इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं है तो उनका ज्ञान अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है, जो पुरुष एक देश मोहसे विरक्त हैं अथवा कुछ ही अस्पष्ट रूपसे जानते हैं उनके ही इन्द्रियकी अपेक्षा हुआ करती है, किन्तु जो इनसे विलक्षण पुरुष हैं, जिनका समस्त व्यामोह क्षीण हो गया है, जो सर्व-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दर्शी हैं उनके इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं होती। जो इन्द्रियकी अपेक्षा रखकर ज्ञान होता है वह ज्ञान सर्वज्ञताको लिए हुए नहीं हो सकता। इन्द्रियकी अपेक्षा रखनेपर जो भी ज्ञान होगा वह हीन ज्ञान होगा, सर्वज्ञ ज्ञान नहीं बन सकता। क्योंकि समस्त पदार्थों के साथ इन्द्रियका सम्बन्ध एक साथ सम्भव ही नहीं है और साक्षात् भी सम्भव नहीं, परम्परया भी समस्त पदार्थोंके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध सम्भव नहीं है। इन्द्रियके द्वारा पदार्थोंको जान जानकर कोई पुरुष चाहे कि सर्वज्ञ हो जायें तो यह एकदम असम्भव बात है। यह जीव ज्ञानस्वभावी है। इसके जाननेका स्वभाव है। इस समय संसारी जीवोंमें जो जाननेकी हीनाधिकता देखी जा रही है वह स्वभावके कारण नहीं किन्तु प्रतिबन्धक कर्मके उदयका निमित्त पाकर हो रहा है। जहाँ प्रतिबन्धक कर्म दूर हुए वहाँ ज्ञस्वभाव आत्माके ज्ञानको सर्वव्यापी होनेमें विलम्ब नहीं लगता।

अवधिज्ञानी व मनःपर्ययज्ञानीकी अक्षानपेक्षताका कारण— यहाँ शंकाकार कहता है कि अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान भी तो प्रत्यक्षज्ञान हैं और अतीन्द्रिय माने गए हैं। इन्द्रियके द्वारा अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान नहीं जाना किन्तु इन्द्रिय मनकी सहायता लिए बिना अपने आप आत्मीय शक्तिसे स्पष्ट ज्ञान करता है। और अवधिज्ञानी और मनः पर्ययज्ञानी जीव सर्वतः विरत व्यामोह नहीं है अर्थात् पूर्णतया वीतराग नहीं हैं। वीतरागताकी पूर्णता १२ वें गुण स्थानमें होती है। वीतराग ११ वें गुणथमें भी हो जाता, किन्तु वह चारित्र मोहके उपशम श्रेणीकी बात है, उसे भी शंकामें रख लीजिये। अवधिज्ञानी और मनःपर्यय ज्ञानी जो एक देशसे ही निर्मोह हैं और असर्वज्ञ हैं लेकिन उनको भी बताया गया है कि उनके ज्ञानके लिए इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं की जाती है। तो अभी तो यह कहा जा रहा था कि जो एक देश रूपसे निर्मोह हैं उनके ही इन्द्रियकी अपेक्षा बनती है लेकिन यहाँ ये अवधिज्ञानी व मनःपर्ययज्ञानी एक देश निर्मोह हैं इनके इन्द्रियकी अनपेक्षा कैसे बनेगी अर्थात् अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानोंको जाननेके लिए इन्द्रियकी अपेक्षा रखनी पड़ेगी। उत्तरमें कहते हैं कि अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरणके क्षयोपशमका ऐसा अतिशय है कि वे ज्ञान अपने विषयोंके स्पष्ट और इन्द्रियकी अपेक्षा न रखकर जानते हैं। ऊपर जो यह कहा गया है कि एक देशसे जो निर्मोह है उसके ही इन्द्रियापेक्षा बन सकती है। इस कथनमें यह तो नहीं कहा कि जो एक देश निर्मोह है उसके इन्द्रिय की अपेक्षा होनी पड़ेगी लेकिन जहाँ–जहाँ इन्द्रियकी अपेक्षा पड़ती है वे एक देशसे निर्मोह हों अथवा मिथ्या दृष्टि हों उनके इन्द्रियकी अपेक्षा होती है। अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान एक विशिष्ट क्षयोपशमके अतिशय वाले ज्ञान हैं उन ज्ञानोंसे अपने विषय में स्पष्ट ज्ञान होता है, अवधिज्ञानका विषय है रूपी पदार्थ। अवधिज्ञान अपनी योग्यता माफिक जैसी उसकी अवस्था मिली है, नियत क्षेत्रमें, नियत काल तकके नियत आकार में रूपी पदार्थोंको जानते हैं। मनः पर्ययज्ञानका विषय है दूसरेके मनमें ठहरे हुए पदार्थ विकल्प, विचार उन्हें मनःपर्ययज्ञानी स्पष्ट जानते हैं। इसका क्षेत्र है ढाई द्वीपके परि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

माण बराबर और काल है कुछ ५–७ भवों तकका। तो ये अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान चूंकि ज्ञानावरण सहित जीवके पाये गए हैं अतः सर्वके ज्ञाता न हो सके। हाँ अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान एक ऐसे विशिष्ट ज्ञान हैं कि केवल आत्मीय शक्तिसे अन्तःउपयोग द्वारा इसका विषय जान लिया जाता है।

सर्वतो विरतव्यामोहत्व व सर्वदर्शित्व हेतुकी निर्दोषताका वर्णन

यहाँ शंकाकार कहता है कि सर्वरूपसे निर्मोह हुए बिना और सर्वदर्शी हुए बिना जब अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं होती है तब आपका यह हेतु कि समस्तरूपसे यह निर्मोह है और सर्वदर्शी है, इसमें अनैकान्तिक दोष आजाता है। अनुमान बनाया गया है कि प्रभुके ज्ञानको इन्द्रियकी अपेक्षा लेना लक्षित नहीं होता है क्योंकि वे पूर्णरूपसे निर्मोह हैं और सर्वदर्शी हैं, तो अब देखिये कि समस्तरूपसे जो निर्मोहपना है और सर्वज्ञपना है सो अक्षानपेक्षाको सिद्ध करे लेकिन यहाँ जो एक देश निर्मोह हैं और सर्वदर्शी नहीं है उनकी भी इन्द्रियानपेक्षा मानी गई है तब अनैकान्तिक दोष क्यों न होगा? उत्तरमें कहते हैं कि यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित नहीं हो सकता कारण यह है कि इसका विपक्ष है इन्द्रियापेक्ष ज्ञान। जो साध्यसे विपरीत धर्म वाला हो उसको ही तो विपक्ष कहते हैं। इस अनुमानमें साध्य बनाया गया है अक्षानुपेक्ष अर्थात् इन्द्रियकी अपेक्षा न होना। तो जो ज्ञान अक्षानपेक्ष नहीं है, इन्द्रिय सापेक्ष है वह ही तो विपक्ष कहलाता है। सो अक्षापेक्ष मति श्रुत ज्ञानमें याने विपक्षमें विरतव्यामोहपना और सर्वदर्शीपना नहीं पाया जाता है। विपक्षमें हेतुके न पाये जानेसे अनैकान्तिक दोष नहीं रहता। अब शंकाकार कहता है कि अनैकान्तिक दोष चाहे मत रहो लेकिन इन हेतुवोंमें अहेतुपना बन जायगा। कारण यह है कि ये दोनों हेतु समस्त पक्षोंमें व्यापक नहीं होते। अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानमें सर्वतः निर्मोह और सर्वदर्शीपना कहाँ है? इसके समाधानमें कहते हैं कि यह शंका यों युक्तिसंगत नहीं है कि इस अनुमानमें सकल प्रत्यक्षको ही पक्ष बताया गया है। सकल प्रत्यक्ष ज्ञानमें इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं होती क्योंकि पूर्णनिर्मोहता और सर्वज्ञता होनेसे। तो इस अनुमानका पक्ष केवल सकल प्रत्यक्ष है और सकल प्रत्यक्षमें हेतुका सद्भाव पाया जा रहा है। जो सकल प्रत्यक्षके अधिकारी हैं ऐसे परम पुरुष पूर्णरूपसे निर्मोह और सर्वदर्शी होते ही हैं। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान विकल प्रत्यक्ष हैं। हैं यद्यपि ये भी प्रत्यक्ष क्योंकि इन्द्रिय मनकी सहायता लिए बिना आत्मीय शक्तिसे ही स्पष्ट परिज्ञान करते हैं ये। लेकिन विकल प्रत्यक्षको यहाँ पक्षरूपमें नहीं लिया गया है।

अस्मदादि प्रत्यक्षसे विलक्षण सर्वज्ञ प्रत्यक्षकी अक्षानपेक्षा— अब यहाँ शंकाकार कहता है कि जब हम लोगोंके प्रत्यक्षमें इन्द्रियकी अपेक्षा हुआ करती है तो सर्वज्ञके प्रत्यक्षमें भी इन्द्रियकी अपेक्षा रही आये, इसमें क्या आपत्ति है? उत्तरमें कहते हैं कि अस्मदादि प्रत्यक्षका उदाहरण देकर सर्वज्ञप्रत्यक्षमें अक्षापेक्षाकी बात नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कही जा सकती है। अन्यथा हम लोगोंके चक्षु जब अंजन आदिकसे असंस्कृत होते हैं तो हम लोगोंके उन असंख्यात चक्षुओंको आलोककी अपेक्षा पड़ती है, सो इसका उदाहरण देकर यह कह बैठेगा कोई कि जब अंजन आदिकसे संस्कृत चक्षु हो जाते हैं तब भी उस किसी संस्कृत चक्षु वाले पुरुषको आलोककी अपेक्षा करना पड़नेका प्रसंग आ जायगा। हम लोगोंके प्रत्यक्षसे सर्वज्ञ भगवानका प्रत्यक्ष विलक्षण है। अतएव हम अपनी सदृशता जैसे कि हमारा ज्ञान इन्द्रियाधीन है, अस्पष्ट है इस तरह हम सर्वज्ञके ज्ञानमें भी बात लादें तो यह युक्त नहीं है। अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष और इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष की पद्धति बिल्कुल भिन्न होती है। इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष वाले पुरुषको जाननेके लिए उपयोग लगाना पड़ता है अधीरता, चञ्चलता विकल्प ये सभी आते हैं, किन्तु अतीन्द्रिय प्रत्यक्षमें उपयोग नहीं लगाना पड़ता। सहज ही उस विशुद्ध परम पुरुषके ज्ञान निर्दोष स्पष्ट रहता है। उन्हें कोई मोह नहीं इच्छा नहीं विकल्प नहीं। अन्य शुद्ध द्रव्योंकी तरह अपने आपका सहज परिणमन उनमें होता है।

इन्द्रियोंमें प्रत्यक्षकी नियतकारणताके अभावका कथन - अब यहाँ शंकाकार कहता है कि रात्रिमें विचरने वाले उल्लू, बिल्ली आदिक अनेक जानवरोंका प्रकाशके न होनेपर भी स्पष्ट अवलोकन प्रसिद्ध है। इससे प्रकाश ज्ञानका नियत कारण नहीं है। प्रकाशके बिना भी देखिये अनेक जीवोंके प्रत्यक्ष ज्ञान बन जाया करते हैं। तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो स्पष्ट सत्य स्वप्न ज्ञानकी अक्षानपेक्षता याने चक्षु आदिक इन्द्रियोंकी अपेक्षा न होना प्रसिद्ध होनेसे अक्ष याने इन्द्रियाँ भी प्रत्यक्षका नियत कारण मत होओ। किसीको स्वप्न ज्ञान हो रहा है, नींदमें अनेक दृश्य दिखाई दे रहे हैं तो उसे उस नींदमें वे सब दृश्य तो स्पष्ट ही दिखाई देते हैं और उस समय नेत्रादिककी अपेक्षा भी नहीं हो रही। नेत्र बन्द हैं, कभी शब्द भी सुनते हैं तो इन कानोंसे नहीं सुन रहे किन्तु स्वप्नमें क्योंकि वहाँ मानसिक विकल्प चल रहे हैं तो उस सत्य स्वप्नज्ञानमें जो कि स्पष्ट हो रहा वहाँ जब चक्षु आदिक इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं पड़ रही है तो ऐसी अनपेक्षा देखकर यह भी कह दिया जा सकता कि इन्द्रियाँ भी प्रत्यक्षका नियत कारण नहीं होवें! इससे यह बात तो मान लेनी चाहिए कि जैसे अंजन आदिकसे संस्कृत नेत्र वाले पुरुषको प्रकाशकी अपेक्षा नहीं रहती है स्पष्टतया करके देखनेमें, इसी प्रकार जो सब देशसे निर्मोह है उसको समस्त पदार्थोंके साक्षात् करनेमें अर्थात् स्पष्ट विश्वके ज्ञान करनेमें इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं रहती। अन्य दृष्टिसे निहारा जाय तो इस आत्माका स्वरूप सिवाय ज्ञानके और कुछ दृष्टिगत न होगा। ज्ञानमात्र ही यह आत्मा है, ज्ञान ही स्वयं यह आत्मा है। तो जिसका स्वरूप ही ज्ञान है उसको जानके लिए किसीकी अपेक्षाकी आवश्यकता नहीं है। इस संसारमें प्राणियोंको जो ज्ञानमें इन्द्रियकी अपेक्षा पड़ रही है, सो आवरणके द्वारा आवृत होनेकी स्थितिमें इन्द्रियकी अपेक्षा पड़ रही है। जहाँ कोई प्रतिबंध नहीं रहता वहाँ ज्ञानस्व-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भावी आत्माको समस्त विश्वका परिज्ञान करनेमें इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं होती। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि जो ऐसा ज्ञान होता है, जिसमें इन्द्रियके क्रमका व्यवधान नहीं है वह ज्ञान नियमतः प्रत्यक्ष होता है। इन्द्रियके क्रमका व्यवधान ही एक ऐसा बड़ा आवरण है कि उस ज्ञानमें पारमार्थिक स्पष्टता नहीं आती है। यहाँ इस इन्द्रियजन्य ज्ञानमें रूप देख लिया, कोई चीज छू ली, खा ली तो उसमें जो ज्ञान होता है उसे स्पष्ट ज्ञान कहते हैं। इसे स्पष्ट ज्ञान कहना उपचारसे है। वस्तुतः यह स्पष्ट ज्ञान नहीं है। आँखोंसे भींटको देखा, भींटका ज्ञान एकदेश स्पष्ट है समग्र भींटको हम कहाँ जान पा रहे हैं? और, रूपको देखा ना तो इन इन्द्रियोंके द्वारा उस भींटके रूपका ही ज्ञान हो पाया, लेकिन भींटरूपमात्र ही तो नहीं है। वह तो रूप, रस, गंध, स्पर्श चारों गुणोमय है। यदि भींट अर्थका स्पष्ट ज्ञान होता तो वह सब कुछ जैसा है वैसा ही जाननेमें आता। इस कारण इसे पूर्णतः स्पष्ट नहीं कह सकते। व्यवहारमें एक देश स्पष्ट कहते हैं। तो यह इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षज्ञान वस्तुतः परोक्षज्ञान ही है। एकदेश विशद व्यवहारके होनेसे इसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है। इस प्रत्यक्षकी प्रतिविधि सदृशता लेकर अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञानमें शंका करना योग्य नहीं है।

अतीन्द्रियप्रत्यक्षज्ञानीके आप्तपना होनेकी संभवताकी ध्वनी—इस कारिकाके अन्तिम अंशमें ध्वनित है कि जो इन्द्रियके क्रमके व्यवधानका उल्लंघन करने वाला अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष, सकल प्रत्यक्ष है वही संसारी जीवोंका गुरु है याने सकलप्रत्यक्ष ज्ञानी परमात्मा आप्त है, यह बात प्रमाणसे प्रसिद्ध होती है। इस कारिकामें जो अंतिम वाक्य है कि कश्चिदेव भवेद्गुरुः अर्थात् कः चित् एक भवेद्गुरुः भवेतोंका गुरुः अर्थात् संसारी प्राणियोंका गुरु सर्वज्ञ परमात्मा ही है। जो भवको प्राप्त हों उन्हें कहते हैं भवेत् उनका गुरु कौन हो सकता है? कः अर्थात् परमात्मा। और, वह परमात्मा चितस्वरूप ही है, चित् तो सभी जीव हैं किन्तु इस विशिष्ट प्रसंगमें चित्स्वभावका अर्थ पूर्णतया निर्मल सर्वज्ञदेव लेना चाहिए। तो जो रागद्वेष मोहसे रहित हैं, समस्त भूत, भविष्य, वर्तमान त्रिलोकवर्ती पदार्थोंका एक साथ ज्ञाता है ऐसा पावन पुरुष भगवान सकल परमात्मा ही सब संसारी जीवोंका गुरु प्रसिद्ध होता है। तब तीर्थके चलाने मात्रसे कोई गुरु नहीं हो सकता है। वहाँ यह निरखना होगा कि जिसके वचन परस्पर विरुद्ध न हों, वस्तुस्वरूपके प्रतिकूल न हों वही पुरुष आप्त हो सकता है। आप्तका निर्णय करना हित चाहने वाले पुरुषोंको इस कारण अत्यन्त आवश्यक है कि हित चाहने वाला पुरुष किसी शासनका ही आश्रय करे, इसके लिए यह जानना आवश्यक है कि जिस शासनके प्रणेता आप्त हों, सत्य सम्पूर्ण ज्ञानके प्रभु हों उनके मूलसे चला आया हुआ जो शासन है उसका आश्रय लेकर ही हम हित मार्गमें बढ़ सकते हैं। तो यहाँ तक आप्तकी मीमांसामें यह कहा गया कि देवागमनसे या आकाश विहारसे या मलमूत्ररहित शरीर होनेसे अथवा तीर्थके चलाने मात्रसे कोई आप्त नहीं हो सकता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फिर किन कारणोंसे प्राप्त हो सकता है ? इस विषयका वर्णन अब आगेकी कुछ कारिकाओंमें किया जायगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com